तितली

दीपम ना. पार्थसारथि

अनु-
केत्सी रोस बड

உலகளாவிய பொதுக் கள உரிமம் (CC0 1.0)

இது சட்ட ஏற்புடைய உரிமத்தின் சுருக்கம் மட்டுமே. முழு உரையை https://creativecommons.org/publicdomain/zero/1.0/legalcode என்ற முகவரியில் காணலாம்.

பதிப்புரிமை அற்றது

இந்த ஆக்கத்துடன் தொடர்புடையவர்கள், உலகளாவிய பொதுப் பயன்பாட்டுக்கு என பதிப்புரிமைச் சட்டத்துக்கு உட்பட்டு, தங்கள் அனைத்துப் பதிப்புரிமைகளையும் விடுவித்துள்ளனர்.

நீங்கள் இவ்வாக்கத்தைப் படியெடுக்கலாம்; மேம்படுத்தலாம்; பகிரலாம்; வேறு கலை வடிவமாக மாற்றலாம்; வணிகப் பயன்களும் அடையலாம். இவற்றுக்கு நீங்கள் ஒப்புதல் ஏதும் கோரத் தேவையில்லை.

✸✸✸

இது, உலகத் தமிழ் விக்கியூடகச் சமூகமும் (https://ta.wikisource.org), தமிழ் இணையக் கல்விக் கழகமும் (http://tamilvu.org) இணைந்த கூட்டுமுயற்சியில், பதிவேற்றிய நூல்களில் ஒன்று. இக்கூட்டுமுயற்சியைப் பற்றி, https://ta.wikisource.org/s/4kx என்ற முகவரியில் விரிவாகக் காணலாம்.

Universal (CC0 1.0) Public Domain Dedication

This is a human-readable summary of the legal code found at https://creativecommons.org/publicdomain/zero/1.0/legalcode

No Copyright

The person who associated a work with this deed has **dedicated** the work to the public domain by waiving all of his or her rights to the work worldwide under copyright law, including all related and neighboring rights, to the extent allowed by law.

You can copy, modify, distribute and perform the work, even for commercial purposes, all without asking permission.

✸✸✸

This book is uploaded as part of the collaboration between Global Tamil Wikimedia Community (https://ta.wikisource.org) and Tamil Virtual Academy (http://tamilvu.org). More details about this collaboration can be found at https://ta.wikisource.org/s/4kx.

दक्षिणी साहित्यमाला

तितली

मूल लेखक :
दीपम ना. पार्थसारथी

अनुवादिका :
केत्सी रोस बड़

प्रकाशक
दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा
मद्रास

हिन्दी प्रचार पुस्तकमाला, पुष्प—318

प्रथम संस्करण :

नवंबर, 1976

2

"Paper used for printing of this book was made available by the Government of India at concessional rates"

सर्वाधिकार स्वरक्षित

दाम रु. 7-00

O. No. 1049

मुद्रक : हिन्दी प्रचार प्रेस,

त्यागरायनगर, मद्रास-17

प्रकाशकीय—

सभा की नयी योजना 'दक्षिणी साहित्यमाला' प्रकाशन के अठारहवें उपहार के रूप में 'तितली' हिन्दी जगत के सामने प्रस्तुत करते हुए हमें प्रसन्नता हो रही है।

साहित्य के पारस्परिक आदान प्रदान से एकतासूत्र और भी सुदृढ़ हो सकेगा। हृदय परिवर्तन सबसे श्रेष्ठ माना जाता है। सामाजिक, सांस्कृतिक एवं धार्मिक एकता, राष्ट्र में भावात्मक एकता की वृद्धि में सक्षम है एवं महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है।

प्रस्तुत ग्रन्थ तमिल के सशक्त उपन्यासकार श्री ना. पार्थसारथी के 'पट्टुप्पूच्चि' का हिन्दी रूपान्तर है। श्री पार्थसारथी जी तमिल मासिक पत्रिका दीपम के सम्पादक हैं। आपने कई उपन्यास, कहानियाँ, निबंध आदि लिखे हैं। आपकी विचारधारा गांधीवादी है, जिसका प्रभाव इस उपन्यास में परिलक्षित हैं। स्वतंत्रता संग्राम के सेनानी, गांधी भक्त पिता की इकलौती बेटी सुगुणा विश्व विद्यालय की उपाधि-धारी होने पर भी ग्राम—सेविका बनकर ग्रामोद्धार करना चाहती है, लेकिन वहाँ उसे पग-पग पर यथार्थ से टक्कर खानी पड़ती है। इसका चित्रण इस उपन्यास में हुआ है। उपन्यास के सभी पात्र हमारे चिरपरिचित ही हैं। मुर्गी पालक वडमलैपिल्लै, पंचायत बोर्ड

के नेता, ग्राम मुंसिफ ये सब जब तक गाँवों में रहेंगे, तब तक हजारों गांधियों के आने पर भी सुधार नहीं हो सकता। आज भी ऐसे लोग गाँव-गाँव में मिलते हैं, जहाँ आदर्शवादी पनप नहीं सकते।

प्रस्तुत अनूदित कृति सभा के उच्च शिक्षा एवं शोध संस्थान विभाग के ग्रंथानुवाद-पाठ्यक्रम के अंतर्गत तैयार की गयी है।

केत्सी रोसबड़ ने इसका अनुवाद किया है, अनुवादिका बधाई के पात्र है।

हमारा पूर्ण विश्वास है, इस सामाजिक उपन्यास का हिन्दी जगत समुचित स्वागत करेगा।

—प्रकाशक

1. दीक्षान्त समारोह

विश्व विद्यालय से आये हुए, दीक्षान्त समारोह निमंत्रण-पत्र को पढ़ने के बाद सुगुणा को अपनी पुरानी स्मृतियाँ आने लगी। उसको ऐसा लगा कि परीक्षा अभी-अभी समाप्त हो गयी है। परन्तु वास्तव में बहुत दिन बीत गये थे। परीक्षा-भवन का शान्त वातावरण, परीक्षा का भय, उत्तर देने की आतुरता, भविष्य की चिन्ता आदि के बिम्ब एक साथ उसके मानसपटल पर रूपांकित हो उठे। ऐसा लगा कि वे दिन अभी-अभी बीते हैं। उस परीक्षा भवन में इधर उधर घूमकर परीक्षार्थियों का निरीक्षण करने वाले प्रोफ़सर की पैनी दृष्टि, उत्तर पुस्तिकाओं के पलटने की आवाज़ और ठीक समय पर, उत्तर पुस्तक वापस देने की चिन्ता से व्याकुल चितवन आदि ज्यों के त्यों चित्रवत् उसकी स्मृति में उभर आये।

पढ़ते समय परीक्षा की, और परीक्षा देने के बाद, परिणाम की चिन्ता, उसे सता रही थी। अब तो तीसरी चिन्ता ही है। उमंगों से भरा हुआ मन, नौकरी की चिन्ता से अस्त-व्यस्त हो उठा। सुगुणा ने एक दीर्घ निश्वास लिया। उसके कारण माँ जो-जो कष्ट सहन करती थी, उन पर ध्यान जाते ही वह व्याकुल हो उठी। माँ कितने दिन इस प्रकार पापड़ और बडियाँ बेचकर मेरा और अपना उदर-पोषण करती रहेगी।

सुगुणा को माँ के वचन याद आ गये, जब वह कहा करती थी कि, "सुगुणा मुझे मंझधार में छोड़कर, अल्पायु में ही तुम्हारे पिताजी स्वर्ग सिधार गये। अगर तुम लड़की न होकर, लड़का होती तो मुझे कितना सहारा मिलता! बीता भर लड़का होने पर भी मर्द है न?" जब कभी माँ ऐसा कहती थी, सुगुणा परेशान हो उठती थी। माँ का यह वचन कभी काँटे की तरह उसके हृदय में चुभता था।

सुगुणा कभी-कभी हँसी में माँ से कह देती—"तुम से ऐसी बातें सुनने के लिये ही मैं ने नारी जन्म लिया है। इस का मुझे भी दुःख होता है।"

माँ कहा करती थी—"बेटी मेरी कही बात पर दुखी मत होना। मैंने तो यूँ ही कह दिया था? लोग कहते हैं कि लड़की पैदा होने पर चिन्ता भी पैदा होती है। कभी-कभी माँ से चिढ़ कर बातें करती थी, फिर भी उसको हमेशा माँ के प्रति सहानुभूति अवश्य थी। वह माँ को देवता मानती थी। माँ नहीं हो तो उसके लिये संसार में कुछ भी नहीं है। जिस माता ने इस अवस्था में भी घर घर पापड़ और बडियाँ बेच कर सुगुणा को कालेज में पढ़ाया उसे फिर देवता न समझे तो क्या समझे? लड़का होने पर माँ जिस तरह से संतुष्ट होती है लड़की होने पर भी उसे वही सन्तोष मिला। माँ का हृदय विशाल है। सुविधायें बहुत कम हैं। सुगुणा की माँ के लिये सुगुणा एक ही लड़की थी, इसलिये माँ उसको विविध प्रकारों से अलंकृत देखना चाहती थी। उसके हाथ में

पैसा नहीं था। पापड़-बडियाँ और कुछ खाने की चीजें बनाकर बेचने में क्या कुबेर की संपत्ति मिल जायगी? वह अपना पेट काटकर लड़की को कालेज भेजा करती थी। सुगुणा की माँ को सुगुणा और चिन्ताओं के सिवाय पति से और कुछ विरासत में न मिला था। सुगुणा के पिताजी राष्ट्रीय सेवा और सामाजिक सेवा में गाँव-गाँव में घूमकर अपनी सारी संपत्ति खर्च करके बहुत अल्पायु में ही मर गये। माता में इतना आत्म विश्वास था कि ऊँच-नीच कर्म का भेद भाव सोचे बिना किसी भी काम को साहस के साथ करती थी। यदि ऐसा आत्मविश्वास न होता तो माँ और बेटी दोनों भिखारिनें बनकर किसी मंदिर के सामने पड़ रहीं होतीं। माँ विधवा होने पर भी शान्त थी। माँ के शुद्ध मन के कारण ही इस प्रकार हो सका था।

सुगुणा ने जब एस. एस. एल. सी पूरी की तभी माँ ने उसकी पढ़ाई पर विराम लगाने की सोची। तभी सुगुणा काफ़ी बड़ी हो गयी थी। स्वर्ण-प्रतिमा सदृश सुगुणा को कालेज भेजने के लिए उसकी माँ झिझकती थी। लेकिन सुगुणा पढ़ाई छोड़ने को तैयार न हुई। विवाह की बात आयगी तो उसकी योग्यता सहायक होगी कि लड़की पढ़ी लिखी है। इसी आशा से ही माँ ने अपनी बेटी को बी.ए. तक पढ़वाया। वरना उसकी पढ़ायी कभी समाप्त हो गयी होती।

किसी न किसी तरह से पढ़ाई खतम हो गयी। पहली श्रेणी में उत्तीर्ण होने की उपाधि मिलनेवाली है। कल

दीक्षान्त समारोह होगा। भविष्य उज्जवल हो सकेगा। सुगुणा के मन में दृढ़ संकल्प था कि किसी प्रकार एक नौकरी प्राप्त करना और माताजी को निश्चिन्त रखना। सुगुणा ने सोचा कि नौकरी करने की अनुमति माँ से न मिलने पर भी समझा बुझाकर नौकरी करने जाऊँगी ही। "माँ को अब काम करने न देकर सभी काम मैं स्वयं कर लूँगी। नौकरी पर लग जाने के बाद भी रोज़ दस बजे के पहले घर का सारा काम कर लूँगी और माँ को भी खिलाने के बाद दफ़्तर जाऊँगी। यों पुत्र के अभाव की पूर्ति कर माँ को आराम दे सकूँगी "ऐसा सोचते-सोचते गर्व से उसकी छाती फूल उठती थी।" परीक्षा फल निकलते ही सुगुणा ने अखबारों में विज्ञापनों को देखकर दो तीन जगहों में नौकरी के लिये आवेदन पत्र भेज दिये।

रात को नौ बजे के बाद ही माँ और बेटी को घर में फ़ुरसत से बातें करने का मौका मिलता था। उस समय भी सुगुणा के साथ माँ भी कुछ न कुछ काम करती रहती थी। सुगुणा भी माँ के साथ पापड़ बनाया करती थी।

तब माँ कहा करती—"तुम अपना काम करो इधर मत आओ।" सुगुणा का ऐसा काम करना माँ को पसंद नहीं था। माँ सोचती थी कि अपनी लाड़ली पुत्री को ऐसा काम करना झंड़ा तो उसके सुनहले हाथ मैले हो जाएँगे। माँ के लिये यह गौरव की बात है कि सुगुणा परम सुन्दरी और शिक्षित युवती है।

दूसरे दिन सुगुणा बहुत उमंग में भरी हुई थी। दीक्षान्त समारोह का भाषण बहुत सार गर्भित था। एक साहित्यिक डाक्टर ने दीक्षान्त भाषण दिया। वे समाज सुधारक थे।

भाषण कर्ता ने कहा—"रेल्वे स्टेशन में पैसा डालने पर तुरन्त प्लेटफार्म टिकट बाहर आ जाता है। आप लोगों में कुछ इस पढाई को भी वैसा ही समझते होंगे। लेकिन मैं वैसा नहीं समझता हूँ। उच्च शिक्षा से ज्ञान प्राप्त करने के साथ-साथ दूसरों को भी ज्ञान प्रदान करना चाहिये।" उनके इन विचारों से सुगुणा प्रभावित हो गई। वह भी एक लक्ष्य अपने मन में रखती थी। सुगुणा की इच्छा थी कि ऐसा काम करना चाहिये जिससे लोगों के अंतस्चक्षु खुल सकें। भाषण कर्ता ने अपने भाषण के द्वारा सभी लोगों को प्रभावित किया। गुमाश्ता की नौकरी अथवा सफेद पोश अफसर बनने की कल्पना में डूबे हुए स्नातकों के बीच एक क्रांति मचा दी।

सुगुणा और उसकी सहेलियों ने समारोह समाप्त होने के बाद दीक्षान्त समारोह के लिये पहनी हुई काली पोशाक के साथ सिर पर टोपी रखकर फोटो खिचवा लिये। सुगुणा के घर में घुसने से पहले ही द्वार पर दीठ उतारी गयी। अपनी लड़की पर किसी को दृष्टि न पड़ जाय यही माँ की चिन्ता थी।

भोजन के बाद माँ और बेटी दोनों के बीच भविष्य के बारे में बातचीत होने लगी।

सुगुणा ने कहा—"मैं किसी शान्त और सुन्दर गाँव में जाकर ग्रामसेविका का काम करना चाहती हूँ माँ! इस शहर

और शहर के कार्यालयों की नौकरी मुझे तनिक भी नहीं भाती है। मेरी इच्छा है कि अपनी पढ़ायी से कुछ लोगों को ज्ञान प्रदान करूं।" पुत्री का यह कथन सुनकर माँ की समझ में कुछ भी नहीं आया। कभी-कभी सुगुणा के पिताजी भी माँ की समझ में न आनेवाली ऐसी ही बातें करते थे।

कुछ सोचकर सुगुणा की माँ बोली—तू क्या बक रही है? गाँव में ऐसा कौन-सा बड़ा काम है जो शहर में नहीं है। कहीं तू पगली तो नहीं बन गयी है?"

सुगुणा ने कहा—"इस देश के विश्व विद्यालयों के उपाधि-धारियों में दस प्रतिशत को ही सही, ऐसा पागलपन लग जाता तो हमारा देश कभी का स्वर्ण की फसल देनेवाला बन गया होता। सुगुणा का यह उत्तर सुनकर माँ चकित हो गयी। माँ ने बेटी की ओर घूरकर देखा। उसको भय सा लगा।

2. तामरैकुलम

आदर्श समाज-सेवा और सुधार इस प्रकार की बातें यदि कोई कहने लगता तो सुगुणा की माँ को भय लगता था। उसकी यही धारणा थी कि इस प्रकार बोल-बोलकर ही पति अल्पायु में मर गये। उसका मन विचलित हो उठा अब, लड़की भी इन्हीं शब्दों को दुहराने लगी है।

माँ ने कहा—"अच्छा, तुम्हें तो सब कुछ मालूम है; तुम तो पढ़ी-लिखी हो मैं क्या बताऊँ? अब कोई नौकरी करनी

ही चाहिये। मगर हमेशा नौकरी ही करते रहना भी संभव नहीं, तुम लड़की हो। सांसारिक प्रथा के अनुसार तुम्हारा भी समय पर विवाह होना ही चाहिये।

माँ की बातें सुनकर सुगुणा हँस पड़ी। "मुझे तो कुछ एतराज नहीं माँ। बी. ए. पढ़ चुकी हूँ, क्या इस कारण अपना खर्च कर मुझ से शादी करनेवाला कोई श्रेष्ठ वर मिलेगा? मेरी शादी के लिये तुम्हारे पास कितनी रक़म है? तुम्हारे पास पापड़ और बडियाँ ही हैं। तुम्हारी चिन्ता मैं नहीं जानती क्या? सब कुछ अपने आप हो जाएगा। मुझे अब छोटी बच्ची न समझो।"

माँ चकित हो गयी, जब उस की पुत्री ने बिना संकोच के उत्तर में इतना कह दिया। उसको अभी मालूम हो गया कि सुगुणा की बातों में न्याय है। हाथ में एक पैसा भी नहीं और विवाह की बातें करें तो क्या लोग नहीं हँसेंगे?

माँ ने मन में निश्चय कर लिया कि "जो भी हो, सुगुणा का कथन सत्य है। आगे उससे कहने के बदले उसकी बातें मानना ही अच्छा है।" एक महीने तक इधर उधर घूमने फिरने के बाद मृत पिताजी की देशसेवा, त्याग आदि के बारे में बतलाकर "राष्ट्रीय-विकास-योजना" में सुगुणा ने अपने लिये एक नौकरी प्राप्त कर ली। गाँवों के विकास के लिये सरकार ने एक योजना बनाकर कुछ केन्द्रों को उसके प्रयोग के लिये चुना था। "तामरैकुलम" केन्द्र ऐसा ही एक केन्द्र था जहाँ पर सुगुणा की नियुक्ति हुई।

इस नौकरी के लिये उसे मंत्री तक जाकर कितना प्रयत्न करना पड़ा था। उसके आकर्षक रूप और बी. ए. में प्रथम श्रेणी को देखकर, मंत्री ने मुस्कुराकर उससे पूछा—"ऐसा कठिन काम तुम कर सकोगी? इस में अधिक घूमना होगा। इस संस्था से संबन्धित सभी गाँवों में तुम को साइकिल पर जाना पड़ेगा। मुर्गीपालन व्यवस्था से लेकर प्रौढ़ लोगों की शिक्षा तक सब की घूम घूमकर देख-भाल करनी होगी। ये सब तुम कर सकोगी?"

"सुगुणा ने हँसकर कहा—इस नौकरी के लिए मैं योग्य नहीं हूँ, क्या आप ऐसा समझते हैं? या यह नौकरी मेरे योग्य नहीं? केवल जीविका के लिए मैं इसे नहीं माँगती।

सुगुणा ने माँ से कहा "माँ, मुझे नौकरी मिल गई है। तामरैकुलम नामक गाँव में मेरी नियुक्ति हो गयी है। हमें निकलना चाहिए।" माँ ने तुरन्त स्वीकार कर लिया।

माँ ने कहा—"मुझे दो दिन का अवकाश दो। जिन घरों में पापड़ देती रही हूँ, उनसे मज़दूरी के पैसे लेकर और यह भी कह आती हूँ कि आगे यह काम न कर सकूँगी; बीस वर्षों से जो परिचित हैं उन से बिछुड़ना इतना आसान है क्या? सुगुणा ने भी हरएक से मिल कर बिदा माँग ली।

बिदा माँगते समय सहेलियों ने सुगुणा की सराहना करते हुए कहा—"तुम्हारे स्वभाव के लिए यह नौकरी बहुत अच्छी है, कालेज में भी तो तुम खद्दर-साड़ी पहनकर आती थी न?"

जीवन में समाज-सेवा के प्रति मेरा उत्साह सदा रहा है। उत्साह के कारण ही मैं यह नौकरी करना चाहती हूँ। यदि उत्साह-रहित लोगों को यह नौकरी दी जाय तो मुझे नहीं चाहिए। मेरी इस बात से मंत्री को गुस्सा नहीं आया। वे हँस पड़े थे। सुगुणा में एक विलक्षणता थी। यदि सुगुणा किसी से गरम होकर बातें करती तो भी लोग उस से गरम होकर बात नहीं करते थे। लोग उसके मुख-सौन्दर्य को देखकर कुछ कह भी नहीं पाते थे। हँसकर ही सुनते। उसके सौन्दर्य को देखने के बाद दुष्ट लोगों को भी उससे कटु वचन कहने की अथवा ज़ोर से बोलने की हिम्मत न होती थी। आकर्षण या सौम्यता या सौन्दर्य इनमें से कोई भी शब्द उसके लिये उपयुक्त था।

कुछ सहेलियों ने कहा—"क्यों इस संकट में फँस रही हो? सुन्दर शहर को छोड़ कर गाँव की ओर जा रही हो, क्या वह कुरुक्षेत्र है? तुम हमेशा इस प्रकार कुछ सोचे बिना करती रहती हो?

सुगुणा ने उत्तर दिया, "यह शहर और इस में रहनेवाले लोग सुन्दर हैं—ऐसा केवल आप लोग ही कहेंगे और कोई भी ऐसा नहीं कहेंगे।" सुगुणा मौक़े पर सुन्दर और प्रभावोत्पादक वाक्य कहना भी जानती थी।

"बेटी को नौकरी मिल गयी है। अब हम दूसरे गाँव जा रही हैं।" माँ ने इस प्रकार कहकर अपने परिचित लोगों से बिदा ली।

तामरैकुलम में रेल्वे स्टशन है, पर इस स्टेशन को एक्सप्रेस गाड़ी के रुकने का गौरव प्राप्त नहीं था। सभी स्टेशनों

पर रुकनेवाली गाड़ी यहाँ भी रुका करती थी। हर एक दिन संध्या समय में तामरैकुलम स्टेशन में फास्ट पैसन्जर गाड़ी के आने पर स्टेशन मास्टर को मिलाकर चार लोग ही वहाँ रह जाते थे। किसी के आने या न आने पर भी तामरैकुलम न्यूस ऐजेन्ट "रामलिंग मूप्पनार" अवश्य आया करते थे। "रामलिंग" लिखा देखकर क्या अचरज होता है? एक बार किसी एक तमिल पत्र के प्रबन्ध संपादक ने पार्सल पर "रामलिंग मूप्पनार" (जो सही था) भूल से लिखा था, बस, उसको कितनी तकलीफों का सामना करना पड़ा। उसकी ख्याति शहर भर में व्याप्त थी। न्यूस एजन्ट को आनेवाली सभी पत्रिकाओं के पार्सल शाम की गाड़ी में ही आया करते थे। उनके और स्टेशन मास्टर के सिवा एक पाइन्ट्स्मेन और गाड़ी में आनेवाले लोगों की प्यास बुझानेवाले एक "वाटरमेन" इस प्रकार कुल मिलाकर केवल चार आदमी ही तामरैकुलम स्टेशन पर रहते थे। यह मान सकते हैं कि स्टेशन इन चारों के लिये ही था। इसमें ज़रा भी शक नहीं कि स्टेशन में गाड़ी के आने का यह रहस्य इन चारों को ही मालूम रहता।

लेकिन इस दिन शामको हमेशा की तरह नहीं, उससे भी अधिक हलचल थी। स्टेशन के बाहर दो बैलों से जुती हुई एक बैलगाड़ी खड़ी थी। रेल्वे स्टेशन में दीख पड़नेवाले उन चारों के अलावा पंचायत बोर्ड के नेता, ग्राम-मुंसिफ़, मुर्गी पालन-गृह के वडमलै पिल्लै और खद्दर के दूकानदार राजलिंगम आदि लोग भी आये थे। पूर्णिमा होने के कारण पूरब की

दिशा में पूर्ण चन्द्र ऊपर आ चुका था। चाँदिनी के कारण स्टेशन और गाँव बहुत सुन्दर दिखायी दे रहे थे। नारियल और आम के पेड़ों का चक्कर लगाकर आगे बढ़नेवाली पन्नीर नदी की शोभा निराली थी। ये सब ऐसे लगते थे मानों चन्द्रोदय में स्नान करके ऊपर आ रहे हों। गुलाबजल के समान पानी होने के कारण इस नदी को यह नाम मिला होगा। (पन्नीर का अर्थ है गुलाब का जल) सीधे-सादे और सुन्दर दीख पड़नेवाले गाँवों को छूती-सी पश्चिम घाटी दिखाई पड़ती थी। पहाड़ी प्रान्त में फलों के बगीचे हैं, अंगूर, दाड़िम रसाल, अमरूद, नारंगी और मुसंबि आदि वहाँ की मिट्टी में अच्छी तरह उपजते हैं। नीला पर्वत, उसके साथ हरे भरे बाग, गाँव आदि किसी क्षीर-सागर में डूबकर ऊपर उठने के समान पूर्ण-चन्द्र की शोभा में अदभुत आभा दिखा रहे थे। इसी सुन्दर समय में सुगुणा और उसकी माँ अपने सभी सामान के साथ तामरैकुलम स्टेशन पर उतरीं। उतर कर चारों और दृष्टि डालने पर पहली दृष्टि में ही सुगुणा को वह गाँव अच्छा लगा। सुगुणा देवी बी. ए. नाम को देखकर पंचायत बोर्ड के अध्यक्ष यह समझ रहे थे कि कोई पचास साल की औरत ग्रामसेवा-संस्था की नेता बनकर आयेगी, परन्तु अपने सामने खादी के सफेद कपड़े पहने, मुँह पर बिजली जैसा तेज लिये, हाथ जोड़कर खड़ी हुई सुगुणा को देखकर उनको आश्चर्य हुआ। कैसा सौन्दर्य! कितनी विनम्रता! उनको लगा कि इस सौन्दर्य-मूर्ति नारी के चरण-स्पर्श से यह तामरैकुलम और भी सुन्दर हो जायगा।

ग्राम-मुंसिफ के कानों में, मुर्गी पालन-गृह के वडमलै पिल्लै ने धीमे स्वर में कहा—"ठीक तितली जैसी है।" पंचायत बोर्ड के अध्यक्ष ने अपने हाथ में लाई गुलाब की माला को माँ के हाथ में देकर सुगुणा के गले में पहनने के लिये कहा। बेटी के गले में माला पहनाते समय उस जननी का मन आनंदित हो उठा। अपने साथ आये हुए अन्य लोगों का परिचय पंचायत बोर्ड के अध्यक्ष ने कराया। सुगुणा ने उनको अपनी माँ का परिचय दिया।

सभी सामान बैलगाड़ी में रखकर ग्राममुंसिफ ने मृदुस्वर में कहा—आप दोनों इस पर चढ़कर जाइये हम आ रहे हैं। सुगुणा ने कहा—"क्यों हम सब मिलकर एक साथ ही क्यों न चलें?"

"आपको पैदल चलने की आदत नहीं होगी। हमें प्रति दिन गाँव में चलते-चलते आदत हो गई है। इसलिये हमारे लिये यह कठिन नहीं लगता।"

सुगुणा ने कहा—"इन कष्टों से अनुभव प्राप्त करने के लिये ही मैं आई हूँ।" उनके बहुत मजबूर करने के कारण माँ को गाड़ी में बिठाकर, सुगुणा उनके साथ-साथ चलने लगी। वे चारों अकेले जाते तो हँसते बोलते जा सकते थे। लेकिन सुगुणा के साथ आने के कारण वे लोग आपस में बिना हँसे ही धीमे स्वर में बातें करने लगे। कुछ लड़कियों में ऐसी शक्ति होती है कि उसके साथ आनेवाले दूसरे लोग भी गंभीर बन जायँ।

सुगुणा में इसी प्रकार की शक्ति थी। राजकुमारी के साथ आनेवाले कर्मचारियों के समान आदर के साथ वे लोग सुगुणा के साथ चल रहे थे।

3. देशाटन

तामरैकुलम के ग्रामसेवा-दल के कार्यालय का एक भाग सुगुणा को रहने के लिये दिया गया। उस पुराने घर के चारों ओर बगीचा था। सेवा-दल में सुगुणा के अधीन रहकर काम करने के लिये चार महिलायें और दो युवक ग्राम-सेवक के रूप में नियुक्त थे। हर एक को घूमकर काम करने के लिये साइकिल दिला दी गयी थी। हर एक के लिये चार-चार गाँव बाँट दिये गये थे। लेकिन ग्राम सेवक के रूप में नियुक्त स्त्री-पुरुष अपनी अपनी साइकिलों पर चढ़कर उल्लास यात्रा के समान आम और नारियल के पेड़ों के बगीचे में जाकर आम खाकर और गप्पें मारकर वापस आ जाते। वे ठीक तरह कोई भी काम नहीं करते थे। प्रौढ़ लोगों के शिक्षालय के मकान के अंदर ज़मीन पर झाड़ियाँ उगी हुई थीं। सरकार से अनुदान प्राप्त मुर्गी पालन-गृह में बकरियाँ बँधी थीं। नाम मात्र के लिये मुर्गी पालन का काम चलता था। ऐसा धोखा देकर वडमलै पिल्लै अनुदान ले रहे थे। इस प्रकार न जाने वहाँ क्या-क्या नहीं हो रहा था। यह सब कुछ जानकर भी होता था अनजाने भी।

तामरैकुलम आने के एक हफ़्ते के अंदर वहाँ के बारे में सुगुणा ने खूब समझ लिया कि जैसे दीक्षांन्त समारोह में उस विद्वान ने कहा था। "किसी के आंतरिक नेत्र को उतना शीघ्र नहीं खोला जा सकता।" उलटे उसी के आंतरिक नेत्र अब खूब खुल चुके थे।

माँ ने सुगुणा से तामरैकुलम को सराहते हुए कहा—"बेटी यह गाँव बहुत अच्छा लगता है। दही और दूध खूब मिलता है! तरकारियों की कमी नहीं। नदी का जल भी तो स्वच्छ है।"

सुगुणा ने कहा—"माँ, खूब दूध और दही मिलना ही काफी है क्या? अच्छे लोग भी मिलने चाहिए"। सुगुणा को ऐसा लगा कि मानों मुर्गियों और बकरियों का पालन करने के पहले वहाँ के लोगों के लिए एक प्रशिक्षण-गृह खोलना चाहिये। गाँव के लोग अधिकांशतः या तो कठोर थे या भोले-भाले। धन और पदवी के लिए वे लोग दूसरों को आदर नहीं देते थे। गाँव के लोग कुछ बातें ठीक तरह जान लेते हैं तो कुछ बातों के बारे में गलत धारणा ही रखते थे।

अपने कार्यालय में काम करनेवाली अविवाहिता ग्राम सेविकाओं का मर्दों के साथ गप्पें मारकर हँसकर बोलना, किसी जुलूस में जाने के समान साइकिल पर जाना, कुछ अभद्र व्यवहार करना आदि सब सुगुणा के लिए सह्य नहीं थे। ग्रामसुधार के लिए आये हुए लोगों का ग्रामवासियों के सामने दुराचार करना सुगुणा के लिए असहनीय था। एक दिन सुगुणा ने अपने साथ काम करनेवाली चारों ग्रामसेविकाओं को पास बुलाकर भली

भाँति समझाया। इन बहिनों को भी अच्छी तरह जीना है ऐसा विचार करके ही उसने इस प्रकार उपदेश दिया।

"स्त्री के लिए उसका सौन्दर्य दुश्मन भी होता है। दोस्त भी। स्त्री का सौन्दर्य दूसरों का नाश करते समय एक आयुध है। लाज भी रक्षा करते समय वह एक कवच बनता है। सुगुणा ने उनसे कहा—गाँवों में सरल जीवन बिताने का उपदेश देनेवाले आप लोगों का इस तरह बारीक वायिल की साड़ी और हल्की-झीनी ओढ़नी पहनकर सबके सामने घूमना क्या शोभा देता है? हम सादगी सिखाने के लिए आयी हैं। क्या हमें आडम्बर अपनाना है? गाँवों का सुधार न बन पड़े तो बिगाड़ क्यों करना है? सुगुणा का अपनी बहन समझकर इस प्रकार सरल ढ़ंग से समझाना उन्हें अच्छा नहीं लगा। उसकी बातों पर ध्यान न देकर पीठ पीछे कहने लगीं "हमें उपदेश देनेवाली यह कौन होती है?"

सुगुणा के सामने ही एक ने साहस के साथ कहा कि "खादी का इस प्रकार का मोटा कपड़ा पहनने की हम में शक्ति नहीं है"

अचानक उसका यह कठोर वचन सुनकर सुगुणा को गुस्सा आ गया। अगर सुगुणा चाहती तो तभी अपने अफ़सर को लिखकर उस लड़की को नौकरी से हटवा सकती थी। लेकिन उसने उस समय ऐसा नहीं किया। दूसरों की दुश्मनी लेकर अपने को भला बताने के लिए उसका मन नहीं मानता था। प्रसन्न चित्त होकर सब कुछ सह लेने के विचार से उसने अपने को सँभाला।

ग्राम सेविकायें सुगुणा के संबन्ध में कहती थीं कि "इसको दूसरा काम नहीं, सन्यासी के समान गेरुए रंग की खादी पहनकर घूमती है। इसलिए हमें भी वैसे ही रहना चाहिए क्या?" उस समय भी सुगुणा नाराज़ न हुई। कुमारसंभव में परमशिव के लिए उसी के ध्यान में बर्फीले पहाड़ों की चोटियों पर जैसे पार्वती ने तपस्या की, उसी प्रकार सुगुणा ने भी उस पर्वतीय प्रदेश के गाँव में अपने आदर्श-देवता के लिए तपस्या करने का दृढ़ निश्चय कर लिया। उसने समझा कि आरंभ में ही अविश्वास रखना, रोग को मोल लेना है। सुगुणा ने निश्चय किया कि तामरैकुलम के आसपास अपने अधीन के क्षेत्र को स्वयं साइकिल पर दौरा करके देख आऊँगी। वह औरों को सुधारने के प्रयत्न में अपने को नहीं भूली। बड़ी सतर्कता से वह कर्तव्य पालन में लग गयी।

भोली-भाली सुगुणा को माँ से भी उपदेश मिलता था—"यह गाँव है बेटी। अकेली इन पहाड़ी गाँवों में बिना किसी सहारे के तुम्हें जाना नहीं चाहिए। शहर में जिस प्रकार लोग सोच-विचार कर काम करते हैं, वैसा गाँव में नहीं है। जिस आदमी को वे नहीं चाहते उसको वे बिना आगा-पीछा देखे मार डालते हैं। सँभलकर घूमना। किसी से भी जल्दी नाराज़ न होना।" माँ को भी मालूम था कि सुगुणा न्याय और कर्तव्य को ध्यान में रखकर परिस्थितियों को सँभालती हुई चलती है। वह अपनी पुत्री पर गर्व करती थी। लेकिन बेटी का दूसरों से अधिक मिलना-जुलना उसे आशंकाजनक लगता था।

सुगुणा के तामरैकुलम में आये जैसे-तैसे एक महीना बीत गया। सुगुणा को पहली बार वेतन मिलने पर माँ ने कहा कि "विना चूड़ियों के हाथ अच्छे नहीं लगते, चार सावरन की दो-दो चूड़ियाँ बनवा लो। पापड़ बेचकर मैं ने कुछ रुपये जोड़ लिये हैं उन्हें भी दे दूँगी।" लेकिन सुगुणा कब माननेवाली थी? उसने माँ से कह दिया कि उसे अब चूड़ियाँ नहीं चाहिए।

"आभूषणों की ओर औरतों के झुकाव के कारण ही इस देश की आर्थिक स्थिति ख़राब हो रही है माँ! बड़े फैशन परस्त देशों की स्त्रियाँ तक सोना या चाँदी के आभूषण नहीं पहनती हैं। यह देख लीजिए। यही मेरे लिए आभूषण हैं" ऐसा कहकर माँ के सामने मुस्कुराकर वह खड़ी हो गयी।

सुगुणा की माँ ने कहा—"चल हट।" उस दिन शाम को सुगुणा तामरैकुलम में गयी थी। उसको यह देखकर दुःख हुआ कि वहाँ के ग़रीब बच्चे नग्न होकर महीनों तक बिना नहाऐ, सुअर के बच्चे के समान यहाँ-तहाँ घूम रहे हैं। इस देश में एक ही महात्मा के होने से काम नहीं चलेगा। सुगुणा को लगा कि हर एक शताब्दी में अनेक महात्मा लोगों का जन्म होना चाहिए। सुगुणा सब बच्चों को एकत्रित कर नदी पर ले गयी और अपने हाथों से उनके शरीर पर साबुन लगाकर स्नान कराके गाँव में छोड़कर आयी। दूसरे दिन यह काम करने के लिए कोमला को उसने आदेश दिया तो क्रुद्ध होकर कोमला ने कहा कि उससे यह काम नहीं होगा।

कोमला ने क्रुद्ध होकर कहा—"तुम चाहती हो तो कर लो। हमें तो जानवरों को नहलाने की आदत नहीं है।" इस बार भी सुगुणा ने अपने मन को सँभाला।

सुगुणा ने उत्तर दिया कि "मैंने तुम से जानवरों को नहलाने के लिए नहीं कहा कोमल! बच्चों को ही नहलाने के लिए कह रही हूँ।"

कोमला ने कहा—"उनको नहलाना और जानवरों को नहलाना एक ही है।"

सुगुणा ने कहा कि—"अच्छा! तुम श्रम मत करो। उन जानवरों को मैं ही आगे नहलाया करूँगी।" कोमला भी किसी महाविद्यालय में इन्टर तक पढ़ी थी। परन्तु कोमला इसका दृष्टांत थी कि शिक्षा अहंकार को घटाने के बदले बढ़ाती है।

सुगुणा को मालूम हो गया कि इस ज़माने में विना मेहनत के धन-संचय के अतिरिक्त शिक्षित लोगों की और कोई आकांक्षा नहीं है। यह जानकर सुगुणा को ऐसी पीडा हुई जैसी कि युग युगों की समस्याओं को समझने में होती है।

सुगुणा तामरैकुलम क्षेत्र के सभी गाँवों को देखने के लिये साइकिल पर सवार होकर निकल पडी। अकेली लड़की को इस प्रकार साइकिल पर जाते देख लोग आश्चर्य से आँखे फाड़-फाड़ कर देखने लगे। इतनी अधिक सुन्दरी लड़की का साइकिल पर जाना ही उस गाँव के लिये आश्चर्य था।

जब सुगुणा अपनी साइकिल पर गाँव देखने निकली तो हवेली के दरवाजे पर बैठकर गप्पें मारनेवाले गाँव के मुनसिफ़ और मुर्गी पालन गृह के वडमलै आपस में बातचीत करने लगे।

वडमलै पिल्लै ने कहा कि अरे! तितली साइकिल पर उड़ने लगी ?" सुगुणा उस समय हवेली के पास सडक से गुज़र रही थी।

तामरैकुलम मुनसिफ़ ने ईर्ष्या के साथ कहा "उड़ेगी क्यों नहीं ? पंखों के कटने तक उड़ना ही पड़ेगा।"

ईर्ष्या से वंडमलै पिल्लै ने कहा "तुम जानते हो ? इस लड़की ने यह प्रतिवेदन भेजा है कि मेरे मुर्गी पालन-गृह चलाने में भ्रष्टाचार और धोखेबाजी है। इस कारण सरकार से मिलनेवाला अनुदान बन्द किया जाय।"

ग्राम मुनसिफ़ ने कहा "इतना ही नहीं ? गांव में पानी, बत्ती आदि की सुविधायें ठीक तरह नहीं है—इस प्रकार पंचायत बोर्ड नेता के बारे में भी सरकार को लिखा है।"

"ठीक है ! तितली ने उड़ते-उड़ते डंक मारना भी शुरू कर दिया है"—

ग्राम मुनसिफ़ ने आपनी मूंछों पर हाथ फेरते हुये कहा" इसे इस प्रकार स्वतंत्र रूप से उड़ने नहीं देना है। कुछ न कुछ करना है।

4. इमली के पेड़ों से भरा रास्ता

अपने क्षेत्र की प्रगति के बारे में जानने के लिये सुगुणा पर्यटन करती रही। उस पर्यटन के समय सुगुणा को कई नये अनुभव हुए। कई सत्य सामने आये। तामरैकुलम के पास पश्चिमी घाटी पर्वत था, वहाँ 'चंदनवन नामक एक छोटा गाँव था। उस गाँव में जाने के लिये पहाडों के बीच से एक रास्ता भी था। उस गाँव में जंगली जैसे लोगों के बीस-तीस घर थे। उसकी आफ़िस-पुस्तक में दर्ज़ था कि चंदनवन गाँव में प्रौढ़ों की शिक्षा के लिये एक पाठशाला और एक नया प्रसूति-गृह काम कर रहे है। लेकिन उधर पूछने पर पता चला कि वहाँ न तो कोई पाठशाला है, न प्रसूति-गृह ही। यहाँ तक कि हमारा देश स्वतंत्र हो गया है—यह बात भी उन लोगों को मालूम नहीं थी। यह जानकर सुगुणा को बहुत आश्चर्य हुआ। सुगुणा सोचने लगी कि विलासमय जीवन बितानेवाले शहरों और बड़े-बड़े गाँवों में पाठशालाएँ और महाविद्यालयों को खोलने से संपूर्ण देश में ज्ञान की वृद्धि हो गयी है—यह सोचना महान बेवकूफी है। इस देश के और भी अनेकों स्थानों में ज्ञान की वृध्दि नहीं हुई है। छोटे-छोटे गांवो के लोग अब भी असंस्कृत हैं।

सुगुणा को लगा कि प्राकृतिक सौन्दर्य से भरे पूरे पर्वतीय प्रदेशों में तथा छोटे-छोटे गांवों में जहाँ पढाई के अतिरक्त ध्यान आकर्षण के लिये कोई दिशा नहीं; वहाँ महा-विद्यालय

और विश्व विद्यालयों की स्थापना करने पर यह स्थिति ज़रा बदलेगी। सुगुणा ऐसे पर्यटन से ऊब गयी थी। कन्निकापुरम नामक गाँव में एक आश्चर्यजनक घटना हुई। सुगुणा ने कन्निकापुरम नामक गाँव में अपने जैसे एक आदर्शवादी को देखा। भयानक जंगलों के बीच एक कल्पवृक्ष के समान उस आदमी के परिचय के द्वारा उसको कुछ सांत्वना मिली और आशा बँधी।

जब सुगुणा कन्निकापुरम में अपने सेवादल के सभी कार्यों को समाप्त करके साइकिल पर सवार हो तामरैकुलम जाने को तैयार ही थी कि उस वक्त गाँव के एक प्रतिष्ठित व्यक्ति ने आकर कहा—"यहाँ रघुराम नामक एक कवि हैं। वे समाज सेवा के बड़े उत्साही हैं। वे लँगडे हैं, चल फिर नहीं सकते। आपके आगमन के बारे में सुनकर वे आप को देखना चाहते हैं। क्या आप कृपा कर उन्हें देखने आ सकती हैं?" सुगुणा बड़े उत्साह के साथ उसको देखने के लिये तैयार हो गयी। एक आदर्शवादी को देखने की इच्छा दूसरे आदर्शवादी को ज़रूर होगी ही।

रघुराम नामक कवि के निवासस्थान ने ही सुगुणा के मन में उनके प्रति श्रद्धा उत्पन्न कर दी। गाँव से बहुत दूर उनका स्थान था। रघुराम समुद्र की लहर के समान लहराते एक झील के बीच में नारियल के पेड़ों से घने एक द्वीप में आश्रम जैसी पर्णकुटी बनाकर रहते थे। झील के किनारे साइकिल से सुगुणा को उतराकर नाव के द्वारा घर ले गये।

रघुराम बहुत बड़ा आदमी होगा ऐसा सोचकर सुगुणा गयी थी। लेकिन वह बीस-पैंतीस साल का जवान था। घर के अंदर अलमारियों में बहुत सी पुस्तकें थीं। सुगुणा के प्रवेश करते समय वह एक पुस्तक पढ़ रहा था। सुगुणा को लगा कि उसका चेहरा ही एक अच्छी पुस्तक है। चेहरे पर ओज और गांभीर्य था।

रघुराम प्रभावशाली दीख पड़े। उनकी आँखें बहुत सुन्दर थीं। उन आँखों में बहुत उच्च विचारों की झलक दिखायी पड़ी।

रघुराम ने कहा—"आप के पिता से उनकी अंतिम अवस्था में मेरा निकटतम संबंध था। मैं और वे मिलकर सुब्रह्मण्य भारती के राष्ट्रीय गीतों को कई मंचों पर एक साथ गाया करते थे। दोनों बड़े दोस्त थे। आप के आने के बारे में किसी ने कहा। देखने की बहुत इच्छा हो रही थी।

सुगुणा ने पूछा—"आप इधर अकेले रहते हैं क्या?" रघुराम ने अपने हाथ की पुस्तक को मेज़ पर रखकर उत्तर दिया।

"नहीं! देखने में आश्रम जैसा लगता हैं। लेकिन यह बात नहीं। इस गाँव में यही हमारा घर है। यह द्वीप और झील ही हमारी संपत्ति हैं। मैं और मेरी माँ दोनों ही इधर रहते हैं, गाँव में थोड़ी सी अच्छी जमीन है। मैं तो पिछली अगस्त क्रांति में पुलिस की मार से पाँव तुड़वा कर घर पर ही रहता हूँ। आज तक ये पुस्तकें और चिन्तन ही मेरे साथी हैं। महीने में कम से कम दो सौ रुपये की पुस्तकें खरीदता हूँ।

तामरैकुलम से कन्निकापुरम बहुत दूर नहीं है। जब कभी हो सके आप इधर आयें तो साहित्यिक विषयों के बारे में चर्चा कर सकते हैं। मेरा समय इन पुस्तकों में ही बीतता है। अपंग होकर भी मैं इन पुस्तकों द्वारा मन से चल सकता हूँ।

सुगुणा ने कहा—"मुझे बुलाने जो लोग गये थे, उन्होंने बतलाया कि आप कविता लिखते हैं?"

इसे सुनकर रघुराम कुछ मुस्कुराया। बाद को उत्तर दिया।

"बंदी मन में जब कभी आवेश आता है तब कुछ न कुछ लिख लेता हूँ। मुझे याद नहीं है कि अभी तक मैं ने अपने मन को तृप्त करनेवाली पूर्ण कविता लिखी या नहीं।

इस प्रकार रघुराम और सुगुणा दोनों बातें कर ही रहे थे कि उसी समय अंदर से एक बूढ़ी महिला ने दो ग्लासों में मट्ठा लाकर सामने रख दिया। उसका चेहरा बहुत तेजस्वी था।

रघुराम ने उसकी ओर इशारा करके कहा कि "यह मेरी माँ है"। सुगुणा ने माँ को नमस्कार किया। "अच्छी रहो बेटी"। ऐसा आशीर्वाद देकर, सुगुणा का परिचय रघुराम से सुनकर माँ भीतर चली गयी। थोड़ी देर साहित्य के बारे में चर्चा करने के बाद सुगुणा, रघुराम और उनकी माँ से बिदा लेकर गाँव की ओर चल पड़ी। वह झील नारियल के पेड़ों से भरे द्वीप और रघुराम का सुन्दर घर ये सब सुगुणा के मन में अमिट, चित्रों की तरह स्थायी हो गये। "एक बीघा भूमि चाहिये"—ऐसा गीत गानेवाले महाकवि का गीत उसको याद आया। कन्निकापुरम में कवि रघुराम की बड़ी प्रतिष्ठा

थी। उनका नाम लेते ही लोगों के मुख पर उनका प्रभाव दीख पड़ता था। उस यात्रा में सुगुणा का रघुराम से परिचय एक अनुभव था। उनके पास अच्छी पुस्तकें थीं, इतना ही नहीं? वे स्वयं एक अच्छी पुस्तक थे।

दौरे का अंतिम दिन खतम हो गया। गाँव लौटते समय वह बहुत थक गयी थी। साइकिल पर पेडल मारते-मारते पैर शिथिल हो गये थे। गाँव के पास तक आते आते शाम हो गयी थी। गाँव अभी चार पाँच मील दूर था। अँधेरा बढ़ता जा रहा था। रास्ते के दोनों ओर इमली का घना जंगल था। गाँव में उस स्थान को "कूटटुप्पुळित्तोप्पु" (इमली वन) कहते थे। यह इमली का वन मुर्गी पालन-गृह के वडमलैपिल्लै का था। सुगुणा अपनी साइकिल के पेडल बहुत जल्दी चला रही थी। क्यों कि उस स्थान को वह जल्दी पार कर जाना चाहती थी। एक स्थान पर रास्ते के बीच कुछ लोग बैठे हुए थे। सुगुणा ने सोचा कि वे लोग इमली के पेडों का पहरा दे रहे होंगे, इसलिये सुगुणा ने उन लोगों को उठने के लिये साइकिल की घंटी को जोर से बजाया। वे लोग उठे नहीं। घंटी की आवाज़ सुनने के बाद भी वे लोग वहीं बैठे रहे।

"ओ लड़की! साइकिल रोको।" यह सुनते ही सुगुणा का दिल धड़कने लगा, गला जल्दी सूख गया। साहसी होने पर भी सुगुणा भयभीत होने लगी। फिर धीरज के साथ साइकिल रोककर, उसे स्टान्ड पर खड़ी करके स्वयं भी खड़ी हो गयी। उस अंधकार में भी चमकनेवाले चाकू लेकर एक आदमी पहले

उठकर उसके सामने आया। थोड़ी देर बाद और भी चार पाँच आदमी उस प्रकार के चाकुओं के साथ उसके चारों ओर खड़े हो गये। यह देखकर वह अधीर होगयी।

अगुवा ने पूछा—"क्यों लड़की, तुमने मालिक वडमलै पिल्लै के मुर्गी पालन-गृह के बारे में सरकार को शिकायत-पत्र भेज दिया क्या? क्या यह सच है? उसके प्रश्न में क्रूर भावना के साथ अहं भी था।

सुगुणा ने उत्तर दिया कि "जी हाँ, मैंने भेज दिया है।" भय के कारण वह झूठ नहीं बोली।

उस आदमी ने कहा—"वे इस गाँव के राजा हैं। उनके बारे में इस प्रकार लिखा तो सिर तोड़ दूंगा। तुम से यह बात कहनी थी इसलिये ही हम लोग आये हैं। अब आगे से सावधान रहना।"

यह सुनकर, बिना उत्तर दिये, साइकिल पर चढ़ पैडल मारती हुई आगे बढ़ गयीं। घर आने के बाद ही वह ठीक तरह से साँस ले सकी। लेकिन घर आने पर उसने माँ से इसके बारे में कुछ भी नहीं कहा और कहने को उसका मन भी नहीं हुआ।

तामरैकुलम और उसके आसपास के छः सात मुर्गी पालन-गृहों को वडमलै पिल्लै ही चला रहे थे। झूठ कहकर सरकार से अनुदान ले रहे थे। सुगुणा के प्रतिवेदन के फलस्वरूप इन सात मुर्गी पालन-गृहों को बंद करने और वडमलैपिल्लै को अनुदान न देने की सूचना पाँच छः दिन बाद ही सरकार से आ गयी। वडमलैपिल्लै पहले से ही नाराज थे अब और

भी क्रोधित हो उठे। उन का रूप ज्वालामुखी जैसा हो गया। पंचायत नेता और ग्राम मुन्सिफ़ दोनों ने जलती आग में घी का काम किया। अब सुगुणा के दुश्मन बहुत हो गये। कार्यालय के अंदर भी दुशमन थे और बाहर भी।

वडमलैपिल्लै, ग्राम मुन्सिफ़ और पंचायत बोर्ड के नेता इन तीनों ने एक साथ मिल कर तय किया कि "इस तितली के पर किसी न किसी प्रकार काट कर वापस भेजना है।" लेकिन यह कार्य उन लोगों के लिए उतना आसान नहीं था। सुगुणा का नाश करने के लिये मौका ढूँढ़ रहे थे। सुगुणा क्या करती है? और कहाँ जाती है? हर समय चौकसी करने लगे। सुगुणा भूल से भी कोई गलती नहीं करती। फिर उसपर लाँछन कैसे लगा सकते थे? किसी पर झूठा आरोप लगाते, मगर यह बात भी सही है कि तुले हुए व्यक्ति को आरोप की कहाँ कमी रहती है? वे लोग व्यंग्य से इस प्रकार कहते थे मानो सुगुणा सचमुच एक "तितली" है। ("तमिल में तितली को" "पटटुप्पूच्चि" कहते हैं और रेशम के कीडे को भी "पटटुपूच्चि" कहते हैं।) अपने को नष्ट करके दूसरों को सुख देनेवाली तितली की तरह सुगुणा भी गाँवों के गंदे स्थानों और गलियों में कष्टों को स्वयं सहकर सभी कामों को ठीक तरह करती रही। सुगुणा के द्वारा उस गाँव में अच्छे-अच्छे कार्य हुए। लेकिन वडमलै पिल्लै का क्रोध थोड़ा भी कम न होकर अंदर ही अंदर भभक रहा था। सुगुणा को गढ्ढे में गिराने के लिए वह मौका ताक रहा था।

5. लांछन

एक दिन सुगुणा कार्तिक महीने में कन्निकापुरम के प्रौढ़ शिक्षालय के वार्षिकोत्सव में गयी हुई थी। रात में वर्षा के कारण उसे उधर ही रहना पड़ा। शाम को पानी थोड़ा-थोड़ा बरस रहा था, लेकिन रात में और भी अधिक हो गया। इसलिए वह घर जाने का विचार छोड़कर रधुराम के घर उसकी माँ के साथ रह गयी। सूचना के अनुसार ठीक समय पर उत्सव ख़तम हो जाता तो वर्षा के पहले ही वह घर लौट सकती थी। मगर प्रौढ़ शिक्षालय समारोह अपना नाम प्रौढ़ों की तरह सार्थक कर रहा था। सूचना के अनुसार शाम को पाँच बजे उत्सव होनेवाला था। लेकिन अध्यक्ष साढ़े-छः बजे ही आए। इस प्रकार के सामाजिक उत्सवों को भारत के गाँवों में रखना बहुत मुश्किल है। बड़े धैर्यवान ही उसे सफल बना सकते हैं।

पाँच से सात बजे तक होनेवाला उत्सव रात को साढ़े सात को ही शुरू हुआ और साढ़े नौ को ख़तम हो गया। वर्षा ऋतु शुरू होने के कारण उस रास्ते पर पड़नेवाली अनेक नदियाँ भी ज़ोरों से बहने लगी थी। उस अंधेरे में वह कैसे चल सकती? इसलिए ही सुगुणा को कन्निकापुरम में रात बितानी पड़ी। उसको मालूम था कि समाजसेवा में ऐसी अनेक कठिनाइयाँ रहती हैं। फिर भी रात को बाहर रहना उसको पसंद नहीं था। उसे जो पसंद न था वही उसे करना पड़ा। सुगुणा

अनेकों बार उधर आ चुकी थी। वह रघुराम से बातें करके लौट जाती थी। लेकिन रात में कभी भी उधर नहीं रही थी। सुगुणा की माँ ने उससे कह रखा था अगर कहीं शाम को देर हो जाय तो वहीं रह सकती है, अनावश्यक रूप से रात में बाहर मत रहना। माँ की बातों का उसने अनुसरण किया था।

इसलिए उस रात में वह रघुराम के घर पर ही रह गयी। उसे उस अँधेरे में और बरसात में यात्रा करने के लिए अन्य कोई मार्ग नहीं दीख पड़ा। अगले दिन सबेरे वह कन्निकापुरम से तामरैकुलम आ गई।

वापस आते ही सबेरे दस बजे उसे अपने पंचायत बोर्ड़ कार्यालय को जाना ज़रूरी था। जब सुगुणा उधर पहुँची तो उस समय कार्यालय में वडमलै पिल्लै, ग्राम मुन्सिफ़ और पंचायत बोर्ड़-नेता ये तीनों थे। उसे देखने पर उन लोगों ने शिष्टाचार के नाते "यह भी नहीं कहा "आइए"। बल्कि उसको देखकर वडमलै पिल्लै व्यंग्य से हँसे। और दोनों ने उसे देखकर कहा—"तितली आ गयी"—यह इस प्रकार कहा कि सुगुणा भी सुन ले। सुगुणा ने क्रोध से उत्तर दिया—"जी, आप लोगों से प्रार्थना है कि कृपया शिष्टता से बात करें।

यह कहते समय आवेश में सुगुणा के होंठ और लाल हो गये।

वडमलै पिल्लै ने बोलना शुरू किया—"तुम्हें आदर क्या देना है? हर रोज गाँवों में रात-रात भर रहती हो। कन्निकापुरम का लँगड़ा रघुराम कम पैसेवाला नहीं है।

तुम्हारा उसके साथ रहना भी एक अच्छा कार्य ही है। ऐसा लगता है कि आजकल ग्राम सेवा उसकी झोंपड़ी में ही होती है।" वडमलै पिल्लै की इस प्रकार की बातें सुनने पर सुगुणा को ऐसा लगा कि सिर पर बिजली गिर गयी हो। इस दुनिया में क्या सब लोग इतना विष वमन करनेवाले हैं? उसको बहुत क्रोध आ गया। वह उनके विरुद्ध कुछ भी कर सकती थी फिर भी उसने कुछ नहीं किया। इस दुनिया में न्याय के लिए स्थान कहाँ? ऐसा सोच कर वह बिना कुछ जवाब दिये घर लौट गयी। घर के अन्दर जाते समय सुगुणा की रोनी सूरत को देखकर माँ की समझ में कुछ भी नहीं आया।

सुगुणा से माँ ने पूछा "क्या है बेटी? क्या हुआ? बताओ न? तू इस प्रकार रोयेगी तो मेरा क्या होगा?" सुगुणा माँ के कंधों से लग कर रोने लगी। धैर्यवान सुगुणा को इस प्रकार पहली बार रोते देखकर माँ भी दिग्भ्रमित सी हो, डर गयी।

"क्यों री? क्या हो गया, बतला न? तू इस प्रकार रोयेगी तो मैं कैसे जान पाऊँगी।"

उत्तर दिये बिना सुगुणा और भी सिसक-सिसककर रोने लगी। दूसरे दिन दोपहर को सुगुणा के घर के सामने एक बैल-गाडी आकर रुकी। उस गाडी से क्रोध करती हुई कन्निकापुरम के रधुराम की माँ उतरी। अंदर न आकर जल्दी से दरवाजे के पास खड़ी हो कहने लगी "ओ लडकी! अगर तुझे लाज शरम है तो फिर कभी उस गाँव के पास भी मत

आना। गाँव में सभी जगहों में मेरे बेटे की बुरायी क़र रहे हैं। तुम अच्छी हो। तुम ने कोई अपराध नहीं किया। लेकिन गाँव के लोगों क़ा मुँह कौन बंद कर सकता है। आगे से उधर मत आना। उस गांव में मेरे बेटे का देवता जैसा यश है। पैर टूटने पर भी सम्मान के साथ रहता है। अब तुमने उसको सचमुच ही लँगडा कर दिया। तभी सुगुणा की माँ ने उसके पास जाकर विनय से कहा "अंदर आकर बैठिये और ठीक-ठीक बताइये क्या हुआ?"

उसने कहा "कुछ भी नहीं हुआ। आप की लड़की महालक्ष्मी जैसी है। उसका मन भी पवित्र है। मगर इस गाँव में उसको ऐसी नौकरी नहीं करनी चाहिये। चुपचाप बैठकर और भी दस साल पापड़ और बडियाँ बेचकर एक अच्छा वर ढूँढ़कर उसकी शादी कर देना अच्छा है। बदनाम करनेवाली नौकरी लडकियों को नहीं चाहिये" इस प्रकार शांति से और थोड़े में समझाकर वह महिला उल्टे पांव चली गयी। जब गाडी चली गयी तो सुगुणा से माँ ने क्रुद्ध होकर पूछा "यह सब कैसा नाटक है बेटी?"

सुगुणा ने उत्तर दिया—"ज़िन्दगी का नाटक है"।

माँ ने कहा—"बेटी मुझे उसी समय से मालूम था। नौकरी करनी है तो उदार मना लोगो के गाँवों में करनी है। नहीं तो अच्छा काम भी अपराध हो जाता है। दुनिया में सीधे और सच्चे ढंग से चलना भी एक तरह की गलती ही है।"

सुगुणा ने बहुत दुःखी हो माँ से कहा माँ! हजार बार मैं तुम्हारी इस बात को स्वीकार करूँगी। मैं ने जो कुछ किया वह गलत ही है। इधर तो उदार मनवाले लोग नहीं है। न्याय के रास्ते पर चलनेवाले लोगों के बदले गलत रास्ते पर चलनेवाले लोग ही आज कल की दुनिया को चाहिये। इस पीढ़ी के लोग तो दूसरों के अपराध को देखकर भी अनदेखा बनकर रहनेवालों को ही "अच्छा" कहते हैं। स्वयं अपराध करने पर भी अगर कोई साहस के साथ कहे यह अपराध है तो बुरा ही मानेंगे। पर दूसरों पर लाँछन लगाने में इन लोगों को बड़ी प्रसन्नता होती है।

ऐसे छोटे गाँवों में बुराई की बातों में समय बिताने में और गप्पें हाँकने में ही आनंद मानते हैं। यह सब उन्हें पकवान के समान प्रिय है। लोग कहते तो हैं और दूसरों पर लांछन लगाना पाप है फिर भी उसी पाप को करते रहते हैं।"

उसी दिन तामरैकुलम से आयी हुई डाक की थैली में सुगुणा का त्यागपत्र भी था। अफ़सर को सुगुणा ने इस प्रकार लिखा कि मुझे किसी न किसी प्रकार नौकरी से एक सप्ताह में रिलीव करदें तो अच्छा होगा। जब हजारों लोग इसी नौकरी के लिए आकर खड़े हों तो अफ़सर भला त्यागपत्र लेने से इनकार क्यों करेंगे?

सुगुणा का त्यागपत्र स्वीकृत हुआ। सुगुणा को अधिकारी से पत्र आया था कि दो दिन के अंदर सेवादल की नयी नेता आयेगी उसके पास "चार्ज" देकर सुगुणा रिलीव हो

सकतो है। तामरैकुलम के नेता लोगों से अपने पंखों को कटवाकर जाने के लिये एक नयी तितली आयेगी, ऐसा सोचकर सुगुणा दुखी हुयी। सुगुणा ने माँ से पूछा कि शहर जाने के पहले अंतिम बार कन्निकापुरम जाकर एक बार रघुराम को देखकर आ जाँऊ? माँ ने कहा—"बेटी बिलकुल नहीं। दुबारा अफ़वाहों का शिकार मत बनो।"

6. तितली उड़ गयी

शहर को जानेवाली पैसेंजर गाड़ी हर रोज़ रात में साढ़े सात को ही तामरैकुलम आ जाती है। सुगुणा जब पहली बार तामरैकुलम आयी थी उसी रात के समान जानेवाली रात भी पूर्णिमा की रात्रि है। शरद ऋतु के नीलाकाश में चन्द्रमा बहुत सुन्दर दीख पड़ा। घूँघट में छिपे हुए मुख के समान चान्दनी बहुत सुन्दर थी। नारियल के पेड़, नीले पहाड़ और तामरैकुलम गाँव, सब पहले के समान बहुत सुन्दर दीख पड़े। सुगुणा को ऐसा लगा कि इन सब में आज एक असहनीय शोक छा गया है। अंतिम बार उस गाँव के चारों ओर एक बार देखा। जब वह पहली बार यहाँ आकर उतरी उसी के समान आज का दिन भी बहुत सुन्दर था। गाँव की पुरानी स्मृतियाँ उसके मन में आ गयीं।

बैलगाड़ी से सभी चीज़ों को नीचे उतारकर रेल गाड़ी में चढ़ाने के लिये उचित स्थान खोज रही थी। तामरैकुलम

गाँव के दस-बारह नीचकुल के लड़के-लड़कियाँ सुगुणा के चारों और खड़े थे। गाँव से उसको बिदाई देने के लिये और कोई नहीं आया। जिन्दगी ऐसी ही है। आरम्भ में स्वागत करने के लिये आये हुए लोग अंत में बिदाई देने के लिये भी आयेंगे ऐसा कौन कह सकता है?

उसको सहयोगिनों में से कोमला या परिमला कोई भी स्टेशन तक नहीं आयी। गाड़ी से पार्सल ले जानेवाले न्यूज एजेंट रामलिंग मूप्पनार हिसाब लगा रहे थे कि कल से पत्रिकाओं की बिक्री में एक प्रति कम हो जायगी। अपने घाटे का हिसाब लगा रहे थे। हर एक की अपने नुक्सान के प्रति ही चिन्ता है। दूसरों के नुक्सान की चिन्ता किसी को क्यों?

एक हरिजन लड़की ने सुगुणा से पूछा "बहनजी! आप फिर कब हमारे गाँव आयेंगी?"

उस लड़की को क्या उत्तर दें सुगुणा की समझ में कुछ भी न आ रहा था। बिना कुछ बोले सुगुणा ने सजल नेत्रों से उस लड़की की ओर देखा।

स्टेशन पर पुंग वृक्ष से हवा अच्छी तरह आ रही थी। पास में तार के स्तम्भों से "सी" की आवाज़ सुनायी पड़ती थी।

कुछ न कुछ सोचकर झट से सुगुणा ने स्टेशन मास्टर से जाकर "शिकायत-पुस्तक" माँगी।

स्टेशन मास्टर ने कुछ झिझक के साथ शिकायत पुस्तक को दिया। सुगुणा ने उस पुस्तक में इस प्रकार लिखा:—

"तामरैकुलम गाँव तो बहुत सुन्दर है इसमें संदेह नहीं। लेकिन आदर्श, कर्तव्य और सेवा जैसे विचारों के साथ कोई इधर आयें तो कृपा करके दूसरी गाड़ी से ही लौट जाना अच्छा है। यह गाँव सोने की खान है। मगर मानव का राग-द्वेष रूपी कोयला इस पर छाया हुआ है ताकि इसका स्वर्ण नहीं निकाला जा सके। सिर्फ तामरैकुलम नहीं; भारत देश का हरेक गाँव भी कोयले से ढँकी हुई सोने की खान ही है। जो उस कोयले को निकालकर सोने को लेने की कोशिश करेंगे उनकी बोटी का भी पता लगाना संभव नहीं।"

"भुक्त भोगी एक अबला नारी" लिखकर नीचे हस्ताक्षर करके स्टेशन मस्टर को उसे वापस कर दिया।

वे उसे पढ़कर हँसे।

उन्होंने पूछा कि "आपने क्यों इस प्रकार लिखा?"

सुगुणा ने पूछा—"फिर किस प्रकार लिखूँ? कहिये।

स्टेशन मास्टर ने कहा—"रेल्वे शिकायत पुस्तक में अटपटी बातें लिखकर....?"

स्टेशन मास्टर फिर से हँसा। सुगुणा ने कहा—"संबंध नहीं है ऐसा किसने कहा—जी इस गाँव की सेवा करने की इच्छा से मुझ जैसी कोई यहाँ आये तो रेल से उतरते ही आप उसे दिखाकर दूसरी गाड़ी के लिये तुरन्त टिकट भी दे दें।"

स्टेशन मास्टर ने बहुत दुःख से कहा—"आपने इस प्रकार ही लिखा। कुछ लोग इस प्रकार की शिकायत कर

रहे है कि इस गाँव में यह स्टेशन रहना ही नहीं चाहिए। मैं भी इनका शिकार हूँ।

गाड़ी आ गयी। सभी चीजों को गाड़ी में रखकर माँ और बेटी दोनों चढ़ गयीं। हरिजन बस्ती के बच्चों ने रेल के डिब्बे के पासखड़े होकर सतृष्ण नेत्रों से उसे देखा। उनके रंग में और रेल के डिब्बे के रंगों में कोई फरक नहीं था।

उन काले मुखों को सुगुणा ने देखा। चारु, मीनू, कुप्पन और करुप्पण्णन—हरेक बच्चे का नाम उसे याद आया।

चारु ने एक बार फिर पूछा—"बहनजी। फिर आप कब आयेंगी?"

इस बार भी सुगुणा चुप रही। उस लड़की से "आऊँगी" ऐसा कहना या "नहीं आऊँगी" ऐसा कहना? क्या कहना? और कैसे कहना?

गाड़ी निकल गयी। एँजिन के कोयले के एक टुकड़े ने उसकी आँख में गिरकर तामरैकुलम को उसकी दृष्टि से छिपा दिया।

सुगुणा की माँ ने कहा—"खिड़की बंद कर लो। सर्दी लगती है।" सुगुणा ने उसे बंद कर लिया।

वह गाड़ी सुगुणा को लेकर तामरैकुमल को पार करके चली गयी। रेल में सामने बैठे हुये आदमी के पास अखबार था उसे माँगकर सुगुणा ने पढ़ा।

सुगुणा के दीक्षान्त समारोह में जिसने भाषण दिया उसी विद्वान का और एक भाषण उस अखबार में आया था।

"पढ़ाई को लोगों के ज्ञान चक्षुओं को खुलने का साधन बनना चाहिये। गाँवों में जाकर समाज सेवा करनी चाहिये और गाँवों में जाकर सोना उगाना चाहिये"।

सुगुणा को ऐसा लगा कि पहले अपनी आँखों खोलनी हैं। अपनी आंतरिक आँखें खुले बिना गाँव में रहने वाले दूसरे लोगों की अंतरिक आँखें कैसे खोल सकेंगे? इसे सुगुणा ने अपने अनुभव के द्वारा जान लिया। सुगुणा को ऐसा लगा कि शायद इसलिये मंच के उपदेश जीवन को सुधारने के बदले और भी अव्यवस्थित कर देते हैं।

अनुभवहीन मन को अनुभवहीन के मुँह से मिला हुआ उपदेश, जुड़वाँ अंधे लोगों से प्राप्त उपदेश-दोनों बराबर हैं। विचार के समान आदर्श नहीं होता है। दूर से हरा भरा दीखनेवाला पर्वत जैसे नज़दीक से रूखा सूखा है उसी प्रकार जीवन के कुछ ऊँचे आदर्श भी विचार के लिये हरे भरे और अनुष्ठान के लिये रूखे सूखे हो जाते हैं।

वह जानती थी कि तामरैकुलम के अपने भूतकाल के अनुभवों में उसको आदर्श और यथार्थ का संघर्ष ही दिखाई पड़ता है। रेल की रफ़्तार उन झूठे दृश्यों से सच्चे अनुभवों की ओर ले जानेवाली जैसी लगी। तामरैकुलम उसकी जीवन-गति का एक पाठ हो सकता है। इतनी जल्दी से उस पाठ को पढ़कर जीवन के लक्ष्य संबंधी अपने उत्साह को दबाने में उसको बहुत दुःख हुआ। लेकिन वह दुःख बहुत छोटा दुःख ही है। स्वातंत्रय प्राप्त देश के छोटे-छोटे गाँवों में भी दूसरों

के विचारों को भी स्वातंत्र्य देना न चाहनेवाले कठोर लोगों का जिन्दा रहना भी अपरिहार्य है। सभ्य दीखनेवाले लोगों के मन में भी असभ्यता रह सकती है।

तामरैकुलम में सुगुणा पर लाँछन लगानेवाले लोग रूप से सभ्य थे परन्तु मन से असभ्य थे।

देश को विदेशियों की दासता से छुडाना संभव है। लेकिन मन को स्वातंत्र्य दिलाने के लिए स्वतंत्र होने के बाद भी कई साल लड़ना ही पड़ेगा। कई पीढ़ियाँ भी हो सकती हैं। ऐसा लगता है कि "आदर्श और सद्गुण रखनेवाले लोगों को इन्तज़ार करना ही पड़ेगा।" इस प्रकार वह सोचती रहीं।

इस प्रकार की कई चिन्तायें सुगुणा के मन में आ रही थीं। लेकिन उसकी माँ अपनी बेटी के मन में बहनेवाले विचारों की तानिक भी चिन्ता किये बिना सोने लगी। रेल में बैठे हुये सभी लोग सो रहे थे। ठीक तरह सो नहीं सकते इसे जानने के बाद भी सभी लोग सो रहे थे। सुगुणा ने इससे भी एक पाठ सीख लिया जो कुछ मिला उसे रखकर जीवन को चलाना है।

सुगुणा को ऐसा लगा कि व्यर्थ के झगड़े और ईर्ष्या से भरे आज कल के जीवन में किसी वस्तु की पूर्ण प्राप्ति की आशा नहीं की जा सकती। रेल यात्रा की तरह बीच में जो कुछ मिलता है उसे खाकर जो कुछ स्थान मिलता है उधर सोकर और जो कुछ सुविधायें मिलती है उसे लेकर आगे चलना है।

उसके थके हुये मन में सोते समय स्वप्न सा कुछ आया। वह सच भी नहीं था और न झूठ कुछ और ही दीख पड़ा।

उसकी आँखों के सामने ऐसा दीख पड़ा कि "पढ़ाई के द्वारा दूसरों की आंतरिक आँखों को खोलने का पवित्र काम आप लोगों को करना है"—ऐसा एक विद्वान मंच पर खड़े होकर अपनी संपूर्ण गरिमा के साथ कहते हैं। "मेरा विचार है कि आप लोगों को अपनी शिक्षा से दूसरों के नेत्रों को खोलनेवाली पवित्र सेवा को अपनाना चाहिये"। उसके ओंठ उनसे कई प्रश्न पूछने के लिये लालायित हुए।

माँ ने सुगुणा के सामने आकर हँसकर कहा—"बेटी नौकरी करें तो उदार मनवालों के गाँव में और विश्वसनीय लोगों के बीच में करनी चाहिये।"

कुछ महीनों में परिचित स्थान की बातें, सब उसकी याद में आती हैं। रेल के चक्र की धड़क-धड़क की आवाज़ नींद में भी उसको यात्रा की याद दिलाती रही थी। लोहे पर लोहे के टकराने की आवाज कर्कश लगती होगी। लेकिन वह दौड़ती है, यही उसका लक्षण है। दुनिया की हलचलों में भी जिंदा रहा जा सकता है।

बहुत से लोगा हमें याद करें ऐसा जीवन जीना महत्वपूर्ण जीवन हो सकता हैं। परन्तु अपने आप जीवन को भूल जायें ऐसा भी जीना किस कामका ?

7. अनंत कथा

सुगुणा के आदर्श की कथा तामरैकुलम स्टेशन से समाप्त नहीं हुई। इस अंतहीन कथा को दो भागों में बाँटा जा सकता है। एक तो उसकी कथा समाप्त नहीं हुई और दूसरी सिर्फ उसकी ही कथा नहीं, और किसी की कथा भी उसमें गुँथी हुई थी।

साफ मन, आदर्श और भावुकता जिस नारी में हैं वह अविकसित मनवाले लोगों के बीच ऐसे ही अनुभवों को प्राप्त कर सकती है। आर्थिक स्थिति, पढ़ाई और दुनिया की प्रगति आदि के बारे में ठीक तरह का ज्ञान हमारे देश के गाँवों के लोगों के मन में स्थिर रूप से आने तक तामरैकुलम जैसे छोटे गाँवों में सामाज-सेवा करने की दृष्टि से कोई भी नारी जाये तो उसका अंत इस प्रकार ही होगा। गाँव के अनुदार लोग चमगीदड़ के समान हैं। चमगीदड़ पक्षी वर्ग में है या जानवर वर्ग में है, इसे जाने बिना पक्षियों के उड़ने की प्रवृत्ति और जानवरों की अन्य प्रकार की प्रवृत्तियाँ भी उस में साथ-साथ पायी जाती हैं। गाँवों के अनुदार लोगों का एक पैर प्राचीनता में तथा एक पैर नवीनता में है।

इस प्रकार की चिन्ताओं का रहना भारत देश की बिगड़ी स्थिति का द्योतक है। यह भी कह सकते हैं कि यह साहस हीन होने की स्थिति है। रेल, समाचार पत्र, रेडियो इन सभी के द्वारा गाँवों में सुविधायें देकर इस देश के लोगों के मन में

स्वातंत्र्य की भावना और नया ज्ञान उत्पन्न किया है इस पर हम गर्व नहीं कर सकते। रेल, गाडी, समाचार पत्र, रेडियो ये सब जीवन की सुविधाजनक चीजें ही हैं। उसके द्वारा सुखप्रद अनुभवों को बढ़ाया जा सकता है। लेकिन हम यह नहीं मान सकते कि वे स्वयं संस्कार और ईमानदारी का वर्धन करेंगे।

शरीर को स्वस्थ रक्त की प्राप्ति के लिये पोषक आहार की जितनी आवश्यकता है वैसे ही सात्विक चिन्तन की आवश्यकता गाँव के लोगों को है। ऐसे विचारों को गाँवों में भेजना चाहिये। यह नहीं कह सकते कि समाचार पत्र, रेल, रेडियो आदि से चिन्तनों को हम गाँवों तक ले जाते हैं। लेजाने की भी एक सीमा है। इसको नकारा भी नहीं जा सकता।

जिन दैनिक अख़बारों में किसी एक सिनेमा अभिनेत्री के स्वीड्ज़र्लेंड में बच्चा पैदा होने के समाचार को प्रधानता देते है और जिस साप्ताहिक पत्रिका में बडे घर के मरकतम और छोटे घर के लड़के की प्रेम कथा का धारावाहिक उपन्यास प्रकाशित होता है, वे सब किस ज्ञान की वृद्धि कर सकते हैं?

मातृभाषा को उचित स्थान न देनेवाले रेडियो और दिन ब दिन गिरती हुई रेल गाड़ी ये सब एक प्रकार की सुविधायें ही हैं। ये सभी संस्कृति को बढ़ाते नहीं। ज़्यादा से ज़्यादा, इनसे जीवन सुविधाजनक बन सकता है। जीवन को नवीनता से भर सकते हैं।

तामरैकुलम में सुगुणा के आदर्श और उत्साह की असफलता का कारण उस दीक्षांत समारोह में सुना हुआ उस विद्वान का भाषण ही नहीं है। उनके भाषण को सुनकर भावावेश से भरा हुआ सुगुण का किशोर मन भी कारण नहीं। सुगुणा ने सोचा कि उनका मंचीय भाषण भाँग के समान था और कई लोगों को बिगाड देनेवाला था। परन्तु इसका कारण अपने विशिष्ट अनुभव और उनपर क्रोध भी हैं। उस विद्वान ने यह भी कहा था कि मेरी कीमत आदर्श और जीवन में व्यावहारिकता नहीं। विश्वासी उसके किशोर मन ने संभव और असंभव पर अधिक सोचा ही नहीं। अपरिपक्व मन किसी विषय के संबंध में विभिन्न कोणों से सोचने में असमर्थ है। अपने मन पर छाजानेवाले और प्रसन्न करनेवाले किसी विषय पर एक ही दृष्टिकोण से सोचना बहुत भयंकर है। कोई देश चिन्तन से दास बनने लगा है—इसे समझने के लिये पहला निशान एक ही दिशा में सोचने की आदत कर लेना ही है। मन लगाकर सोचने की आदत होनी चाहिये। मार्क्स इंगिल्स तक ने उसी चिन्तन स्वातंत्र्य का संदेश ही संसार को दिया था।

'हमने अपने बल से और अपने विचारों के साथ, जीवन की विशिष्टताओं को अपनाया है—ऐसा गर्व करना है तो स्वातंत्र्य पूर्ण विचारों की इस देश में वृद्धि करनी चाहिए। ऐसे मस्तिष्कों की आवश्यकता है, जो न प्राचीनता में स्थिर खड़े हों, न कि नवनीता के प्रवाह में जायें। उस प्रकार मन को बढ़ाने में विजयी होने के बाद ही सुगुणा जैसे लोग

भारत देश के गाँवों में निडर होकर समाज सेवा कर सकेंगे। उस वक़्त तक और कोई सेवा न कर सकती तो भी इस देश के मंगलमय स्त्री-कुल से हज़ारों वर्षों से किया जानेवाला पवित्र काम उसके द्वारा भी हो सकता है। वह पवित्र काम क्या है ऐसा पूछते हैं क्या? उसका नाम है "गृहस्थ जीवन"। उसके द्वारा समाज सुधार के लिए अब की परिस्थिति अनुकूल नहीं है। लेकिन इस परिस्थिति में लांछन को भूलकर वह भी समाज के एक व्यक्ति के समान ज़िन्दा रह सकती है। कहाँ तक? ऐसा मान लीजिए कि नीचे बतायी हुई अवस्था तक।

हमारे भारत देश के सभी गाँव सोने की खानों के समान हैं। लेकिन विकास के नाम पर जिस किसी विशिष्ट प्रदेश में समाज सेवा पद्धति, प्रौढ़ शिक्षा, पशु पालन-व्यवस्था आदि जिस उद्देश्य से प्रारंभित की गयी उस उद्देश्य की पूर्ति का समय अभी तक नहीं आया। कारण सोने की खान के गाँव कोयले से भर गये हैं, इसलिए स्वर्ण दिखायी नहीं पड़ता है। इसे जानने के सिवा तामरैकुलम से सुगुणा को और किसी प्रकार का सहारा नहीं मिला। कल सबेरे से मेरी नायिका हलचल भरे हुए शहर का प्राणी बननेवाली है। फिर भी मेरी अभिलाषा है उसका सौन्दर्य तितली के समान ही होना चाहिए। तामरैकुलम में निष्कारण फैला लाँछन दूर होना चाहिए और उसकी अच्छी जगह में शादी होनी चाहिए यह भी मेरी अभिलाषा है। उसको एक अच्छा वर ढूंढ़ लिया जाय।

8. नायिका आयी

सन् 1969 के अप्रैल महीने की एक संध्या का समय था। वह ऐसी संध्या थी कि जब ग्रीष्म की धूप कम हो गयी थी और शीतल पवन बहने लगा था। विभिन्न रंगों से युक्त पसुमलै का दृश्य ऐसा था कि मानो स्वयं पार्वती उसपर स्थित होकर कविता कर रही हो। सामने की सड़क मोटर-गाडियों और घोड़ा गाड़ियों से भरी हुई थीं तिरुप्परंकुन्रम जाने की भीड बहुत ही कोलाहल के साथ जा रही थी।

मैं मदुरै में पसुमलै में अपने घर की छत पर बैठकर कल्पना लोक में विचरण कर रहा था। घर के पीछे रेल की पटरियाँ हैं। उस पर मद्रास एगुम्बूर जानेवाली तूत्तुकुडी एक्स्प्रेस गाड़ी की आवाज़ सुनाई पड़ी। मेरी कल्पना भंग हुई। डाकिया पत्र देकर चला गया। उसी दिन मद्रास से रीडयरक्ट होकर मदुरै आये हुए चार पाँच पत्र मेज़ पर थे। वे पत्र, उसी सप्ताह एक तमिल पत्रिका के नव वर्ष विशेषांक में मेरे "तितली" शीर्षकवाले प्रकाशित किये गये लघु उपन्यास की आलोचना में लिखे गये थे। उस लघु उपन्यास में प्रकट किये गये मेरे विचार विभिन्न पाठकों में अनेक रूपों में प्रतिध्वनित हुए थे। साप्ताहिक पत्रिका की आवश्यकता के लिये मैं ने एक सामाजिक समस्या को उपन्यास का रूप देकर लिखा था परन्तु मैं ने प्रतीक्षा नहीं की कि उसकी इतनी प्रतिक्रिया होगी।

कल्पना की आवाज़ सुनकर पिछड़े हुए मन से सत्य की आवाज़ उठती तो, उस ध्वनि को जिस व्यक्ति ने उठाया वह सहमने के सिवा भला क्या करता ? रामभक्त कुलशेखर ने जब रामायण सुनी तब रामायण की कथा हो रही थी—इस तथ्य को भूलकर रावण से सीता को छुडाने के लिये सज्जा की। किसी भी काल में ऐसे भावुक पाठक हो सकते हैं जो कथा-पात्रों के दुःख को भी सहन नहीं कर सकते। इसी तथ्य को उस दिन आये हुए पात्रों ने सिद्ध किया। मेरी कल्पना से सत्यों का जन्म हुआ था।

उस पत्र में लिखा था कि—"इस कहानी की नायिका सुगुणा का जनता से परिचय दिला कर आप ने बहुत अच्छा कार्य किया। मूर्खतापूर्ण आदर्श लेकर विश्वविद्यालयों से निकलने-वाली युवतियों को इसके द्वारा चेतावनी भी दी गयी है"।

एक पाठक ने मेरे विचार को समझे बिना ऐसा लिखा था कि मैं ने सुगुणा की कथा को इसलिये नहीं लिखा था कि आदर्शों को मूर्खता पूर्ण समझकर छोड़ देना चाहिये। यदि मुझे इस तथ्य को सिद्ध करना है तो सुगुणा की कथा को आगे बढ़ाना चाहिये। यदि यह कथा बढ़ाये बिना, छोड़ दी जाय तो आदर्श मूर्खतापूर्ण हैं ऐसा समझनेवालों को मेरा उपन्यास ही एक प्रबल तर्क हो जायगा। उस कथा को मैं ने पोनमुडी नाम से लिखा था इसलिये पोनमुडी नाम पर पत्र आये थे। और एक पाठक ने लिखा था कि—"जो लोग ग्राम्य लोगों के जीवन स्तर को बढ़ाने की डींग मारते हैं, उन्हें आप की पत्रिका में

पोनमुडी से लिखे हुए तितली नामक लघु उपन्यास को अवश्य पढ़ना पाहिये। पोनमुडी ने आधुनिक काल में गाँवों में होनेवाले अत्याचारों का सजीव चित्र प्रस्तुत किया है।"

और एक पाठक इन सब से आगे बढ़ गये थे। अपने पत्र मैं उन्होंने लिखा था कि वे अनुमान करते हैं कि—"इस लघु उपन्यास की रचयिता कोई नारी ही हो सकती है। लेखक स्वयं महिला होकर गाँव जाकर सेवा करके अपने अनुभवों को पोनमुडी नाम से तितली नामक लघु उपन्यास में कहते हैं ऐसा मुझे लगता है। आदर्श के लिये गाँवों में जिस ने पसीना बहाया उस सुगुणा को मेरी हार्दिक सहानुभूतियाँ हैं। आज कल निन्यानबे प्रतिशत गाँवों में अनेक वडमलैपिल्लै और ऐसे अनेक लोग भी रहते हैं जो सुगुणा को प्राप्त थे। कुछ भी न जाननेवाले गाँव के निष्कपट लोगों को इनके अधीन रहना पड़ता है। और एक पत्र में लिखा था कि इस कहानी की नायिका सुगुणा अपने संस्कार और सतीत्व को खोये बिना उधर से आ गयी। कई गाँवों में नौकरी करने की आशा से आनेवाली अबलाओं पर मनुष्य रूप में रहनेवाले ऐसे भेडिये अत्याचार भी करते हैं। अंत में एक बात उपन्यास की नायिका सुगुणा को एक वर दिलाना है। किसी ने लिखा था कि यदि आपत्ति नहीं हो तो मैं ही उससे विवाह कर लूँगा।"

"इस उपन्यास का केन्द्रवर्ती भाव इस देश में आनेवाली नई पीढी के विचार को बढानेवाला है। यही विचारधारा लोगों की आंतरिक आँखों को खोलनेवाली हैं। और एक पत्र में

लिखा था कि इस उपन्यास में जिस ढंग से सामाजिक कुरीतियों को चित्रित किया गया है वह सराहनीय है।" तमिल जाननेवाले एक केरलीय सज्जन ने लिखा था कि—"सन् 1953-58 में मेरे जो निजी अनुभव हुए उसी प्रकार इस कथा की घटनायें हैं। समाज सेवा की इच्छुक महिलायें ऐसे अनुभवों की प्राप्ति के बाद उस सेवा से घृणा करने लगती हैं।

भारत देश के गाँव कोयले से ढकी हुई सोने की खानें हैं। इस प्रकार का आपका कहना बिलकुल ठीक है। बड़े लोगों के आवरण में छिपकर गाँव के कार्यों से अनुचित लाभ उठानेवाले स्वार्थी लोग ही वह कोयला है। मैं समझता हूँ कि ये सब उन लोगों के निष्ठुर व्यवहार हैं। उन लोगों के कामों को सभी को दिखाकर ठीक तरह काम करनेवाले लोग उधर आयें तो उस गाँव के मृदुल और पवित्र लोगों के मन रूपी सोने को लेकर आभूषण बनाकर देश को दिया जा सकता है। लीजिए, मैं आपकी सुगुणा को फिर तामरैकुलम भेजनेवाला हूँ। बहुत से काम वहाँ उसकी प्रतीक्षा कर रहे हैं।

इस प्रकार उत्साहवश एक ने लिखा था। इन पत्रों को पढ़ने के बाद उस लघु उपन्यास के बारे में और भी कई नये विचार मेरे मन में उठे। उक्त उपन्यास जिस पत्रिका में प्रकाशित हुआ उस कार्यालय से भी मेरे नाम पर आये हुए सभी पत्रों को मुझे भेजा गया था।

इस उपन्यास को लिखने में मेरा उद्देश्य जैसे प्रथम पाठक के कथन के समान, आदर्श मूर्खतापूर्ण हैं, नव स्नातिकायें

जीवन की व्यावहारिक कठिनाइयों को समझे बिना संकट में पड़ जाती हैं। इन बातों को सिद्ध करना नहीं था। आजकल की जिन्दगी की परिस्थिति में गाँव के लोग इस प्रकार रहते हैं। इसे ठीक तरह चित्रित करने के लिये ही मैंने यह उपन्यास लिखा है।

उन चिट्टियों को देखने पर मुझे लगा कि मेरा दायित्व अधिक हो गया है। यदि सुगुणा की कथा को और भी आगे बढ़ाये बिना मैं अधूरी छोड़ देता हूँ तो उसके संबंध में पाठक अपनी-अपनी निराली धारणायें बना लेंगे। "कल सबेरे से मेरी नायिका कोलाहल से मेरे नगर की निवासिनी बन जायगी। मेरी यही शुभकामना है कि चाहे वह कहीं भी रहे वह तितली बनकर रहे। मेरी अभिलाषा है कि उसपर लगाया हुआ लांछन दूर हो जाय और उसका विवाह अच्छे परिवार में हो जाय। इसलिये हो सकें तो एक अच्छा वर ढूंढ़ लिया जाय।

इस प्रकार के अंत में मैंने जो पहेली रखी थी उसे मुझे ही सुलझाना है ऐसा एक नया विचार मुझमें उत्पन्न हुआ। पत्रों को अन्दर रखकर जैसी मेरी आदत थी मैं बाहर घूमने निकला। पश्चिम घाटी के पीछे सूर्यास्त के दृश्य का आनन्द लेता हुआ जा रहा था। मैं प्रातः काल अथवा संध्या समय प्राकृतिक दृश्यों का आनन्द लेता हुआ चिन्तन भी करता था। विषय की सीमा बाँधे बिना सोचा करता था। वही स्वतंत्र चिन्तन है।

लेकिन आज संध्या को मेरे विचारों की एक सीमा आ गयी। उस दिन उन पत्रों के बारे में सोचा था। तितली

नामक लघु उपन्यास की कथानायिका सुगुणा के बारे में था। उसी के चिन्तन में जब मैं घर लौटा तब आश्चर्य हुआ, कोई प्रतीक्षा कर रहा था।

बीस और पच्चीस आयु के बीच की एक सुन्दरी एक सूट्केस के साथ मेरे घर पर बैठी थी। उसने मुझे देखकर तुरन्त उठकर नमस्कार किया। उसके मुख पर प्रसन्नता झलक रही थी।

मैंने पूछा—"आप....कौन है? क्या बता सकती हैं!

मुस्कुराते हुए उसने उत्तर दिया—"और कोई नहीं! आपकी नायिका हूँ"—थोड़ी देर यों ही मैं वैसा ही चुप खड़ा रहा।

9. सुन्दर बातें

जब मन में भावनायें वाणी से अधिक वेग से उठती हैं तब शब्द और अर्थ शक्ति हीन हो जाते हैं वर्षा के समय हरी भरी पुष्पित और ऊर्द्वगामिनी चमेली लता के समान उस सुन्दरी ने मुस्कुराते हुए कहा—"आपकी नायिका हूँ। जिन बातों को उससे बोलने के लिये सोचा था उन सबको मैं भूल गया। वह युवती सामने बैठकर अपलक दृष्टि से मुझे देखती ही रही।

"अन्दर आकर बैठिये मैं आता हूँ" ऐसा कहकर अपने कार्यालय को दिखाकर मैं अन्दर गया। अन्दर रसोई घर में मेरी पत्नी बहुत क्रुद्ध होकर बैठी थी। कल्पना से हज़ारों

नारियों के संबंध में लिखा जा सकता है। उनके वैविध्यपूर्ण सौंदर्य का वर्णन भी किया जा सकता है। किसी भी साहित्यकार की पत्नी उसका विरोध नहीं करेगी। यदि एक युवती सामने आकर "मैं ही आपकी नायिका हूँ" ऐसा कहकर सामने खड़ी हो जाय तो क्या होगा? और जो होना था वह हुआ।

मेरी खोज में आयी हुई महिला की ओर से लापरवाही दिखाते हुए मैंने अपनी पत्नी से कहा—"लगता है कि कोई मेरी खोज में आयी है?" अपनी चतुराई पर गर्व करते हुए मैंने बात कही, उसका जो उत्तर मिला उससे मुझे अपनी नादानी का पता चला। पत्नी ने कहा—"मुझसे पूछें तो मुझे क्या मालूम? आपकी खोज में कई लोग आते हैं उन सभी के संबंध में मैं क्या जानूं?" पत्नी के उत्तर में, मेरी खोज में आयी हुई महिला के बारे में ही नहीं मेरे संबंध में भी उसकी लापरवाही ध्वनित हुई। मैंने ऐसी एक हीनभावना का अनुभव किया जैसे संपूर्ण पुरुष जाति लज्जा से अवाक और नतमस्तक होकर खड़ी है। विषय कुछ भी हो नारियों में बोलने की सामर्थ्य है। वे सुन्दर हैं इसलिए उनकी वाणी भी सुन्दर ही है। उनकी आवाज मधुर हैं इसलिये उनके शब्द भी मधुर और मृदुल हैं। जो शब्द पुरुषों से उच्चरित होने पर कठोर लगते हैं वे शब्द नारियों से उच्चरित होने पर मधुर बन जाते हैं।

उस महिला को चाय लाने के लिये अपनी पत्नी से कहकर मैं कमरे के अन्दर गया। वहाँ कुर्सी पर बैठकर

कुछ पढ़ रही थी वह महिला। मुझे देखकर बहुत विनय से उठकर खड़ी हो गयी । मैंने कहा—"परवाह नहीं ? बैठिये" उसके हाथ में जो पत्रिका थी वह उक्त पत्रिका का वह अंक था जिस में तितली नामक लघु उपन्यास प्रकाशित था। जिन पृष्ठों में वह उपन्यास छपा था, उन पृष्ठों में उसने स्याही से कुछ लिखा था।

मैं ने पूछा—"क्या पढ़ रही हैं ?"

उसने कहा—"आप का लिखा हुआ उपन्यास ही है! पढ़ते समय मुझे जो शंकायें हुई उनको लिखकर रखा है। इसमें आयी हुई सभी घटनायें लगभग मेरे जीवन की जैसी ही हैं। इसलिये मैं ने आप को देखते ही आधा मजाक में और आधा वास्तविकता में—"मैं आप की नायिका हूँ"—ऐसा परिचय दिया। मुझे आप पर और आप के इस उपन्यास पर बहुत संदेह है। मैं ऐसा समझती हूँ कि मेरे साथ "अल्लियूरणी" में जिन लोगों ने ग्राम सेविका का काम किया, उन में से किसी ने आप से मिलकर मेरी कथा कही होगी। नहीं तो आप को मेरा नाम ज्यों का त्यों लिखने की बात कैसे सूझी होगी ?" ये बातें सुनने के बाद उसके मुख को और भी ध्यान से देखने की मुझे इच्छा हुई। उस के मुख को अपलक दृष्टि से देखकर मैं ने पूछा—"अपने को नायिका कहती हुई मुझ पर ही नाराज होती हैं। मेरी कई नायिकायें हैं। वे सब चतुर ही हैं। मुझ से लिखी हुई पुस्तकें और उसके पाठकों के मन में वे नायिकायें मौन रहती हैं। सिर्फ आप ही स्रष्टा को खोजते हुए मेरे पास आयी हैं।"

सुगुणा ने उत्तर दिया—"इसलिये ही तो आप को अवश्य स्वीकार करना होगा कि आप की सभी नायिकाओं में अत्यधिक साहसी मैं ही हूँ।"

मैंने कहा—"ऐसे भी अवसर होते हैं जब आप जैसी नारियों को साहसी नहीं होना चाहिये। ऐसे अवसरों पर अपने साहस पर गर्व कर दूसरों से प्रशंसा की आशा करना भी गलत है।"

उसने कहा—"आप लेखक हैं, साहित्यकार हैं। क्या आप समझते हैं कि आप के सामने मुझे साहस के साथ बात नहीं करनी चाहिये? मेरे साहस से बातें करने के कारण आप मत समझिये कि आप के प्रति मेरी श्रद्धा नहीं है। यदि आप के मत में नवभारत की आधुनिक नारी को कायर के समान मौन रहना है तो वैसा रहने के लिए भी तैयार हूँ।"

मैंने कहा—"मेरा कहना आप गलत मानती हैं? महाकवि भारती से आज कल के पुनरुत्थानवादी लेखक तक कोई नहीं कहेगा कि भारतीय नारी कायर रहे। "नारीत्व अमर हो—"ऐसी घोषणा करनेवाले हम लोग ही हैं। हमें आप गलत समझती हैं तो क्या किया जाय?" तितली उपन्यास में आई हुई सुगुणा न कायर है और न आत्मविश्वासरहित है। सौन्दर्य और सद्भावनाओं से आपूरित एक युवती परिस्थितियों में तैरकर बाहर आकर अपने आदर्श को दूसरों तक पहुँचाये बिना लौट गयी, यहीं पर मैं ने उस उपन्यास को समाप्त किया था। उस लघु उपन्यास में उठायी हुई समस्या अभी तक सुलझी नहीं है।

यद्यपि पत्रिका में यह दिखाया गया है कि उपन्यास समाप्त हो गया, वास्तव में वह अपूर्ण है। हर एक लेखक ने कई पीढ़ियों के पहले से एक एक समस्या को मूलाधार मानकर रचना की थी। उन्हीं समस्याओं के आधार पर आज कल हम भी कहानी, उपन्यास आदि लिखते हैं न? आपको यह मानना पड़ेगा कि इस संसार में चाहे कोई भी समस्या हो जिसकी व्याख्या साहित्य, कविता या काव्य के रूप में की गई हो, उसका एक न एक दिन अंत जरूर होगा ही। यदि मेरा अनुमान ठीक है तो शायद आप भी तितली की नायिका के समान स्नातिका हो सकती हैं। विश्व विद्यालय की उपाधि प्राप्त होने पर भी आप इस बात को समझ नहीं पातीं, यही मेरा दुःख है।

सुगुणा ने कहा—"क्षमा करना। विचार स्वातन्त्र्य चाहनेवालों में मैं एक कमी देखती हूँ। इस देश में विचार स्वातन्त्र्य चाहनेवाले सभी लोग चाहते हैं कि दूसरों को वह स्वातन्त्र्य नहीं होना चाहिए। आप के विचारों को मैं मानती हूँ। अपने विचारों को मान लेने के लिये मैं आप को विवश नहीं करती। लेकिन मेरी अभिलाषा है कि आप शांत होकर मेरे विचार सुन लें।"

मैंने कहा—"अच्छा! आप अपना अभिप्राय कहिये! मैं बहुत खुशी से उसे सुनने का इंतजार कर रहा हूँ। दूसरों के विचारों से ही हम बढ़ते हैं। दूसरों के मतों का हम ऐसा ही स्वागत करते हैं जैसे अनायास प्राप्त स्वर्ण मुद्राओं का। दूसरे के विचार हमारा सुधार भी कर सकते हैं। संसार में साहित्य सृजन

ही ऐसा सृजन है जिस में कि स्पष्ट रूप से और निडर होकर सभी के मतों का स्वागत होता है। साहित्य के दो सिरे हैं। पहली स्रष्टा की आत्मतृप्ति, दूसरा रस का आस्वादन। प्रथम नोक प्रारंभ है। दूसरी नोक ही साहित्य की वास्तविक प्राप्ति है। दूसरी नोक ही उस सृजन के लाभ और हानि होते हैं। आप ही कहिये क्या मैं अपनी रचना की लाभ-हानि के बारे में जानने के लिये इच्छुक नहीं हूँ?"—ऐसा कहकर मैंने उसके मुख की ओर देखा। तब उसके ओंठ और नेत्र दोनों एक साथ हँस रहे थे।

सुगुणा ने कहा—"आप क्रोधित होने पर अच्छा बोलते हैं। ऐसा लगता है कि आप से कुछ जानना है तो पहले आपको क्रुद्ध करके ही जानना चाहिए।" मुझे लज्जा का अनुभव हुआ। जब से मेरे घर में आकर वह मुझ से बोलने लगी थी तब से मैं एक विषय पर ध्यान देता आया। उसके शब्द पूर्ण होकर सौंदर्य के साथ ध्वनित हुए। उसकी बातें बिना बीज के अंगूर की तरह थीं।

मैंने उससे कहा—"आप अच्छा और सुन्दर बोलती हैं। इसे कहने का मुझे स्वातन्त्र्य है या नहीं?" ऐसा पूछते हुए मैं उसे देखकर मुस्कुराया तब पहली बार उसमें लज्जा को देखा। तब मेरी पत्नी चाय के प्याले के साथ अन्दर आयी। मैंने सुगुणा से उसका परिचय कराया। खड़ी होकर सुगुणा ने उसको नमस्कार किया।

मैंने अपनी पत्नी से कहा—"तुम भी बैठो। आपकी नारी जाति के बारे में एक समस्या का फ़ैसला करना है। तुम भी बैठोगी तो मेरे पक्ष को अधिक बल मिल जाएगा।" वह हँसकर चली गयी।

10. धोखेबाजी की बलि होनेवाली जाति

सुन्दरता, चुस्ती और यौवन से पूर्ण वह जब मेरी खोज में आयी तब उससे झगड़ा मोल लेकर, उसके क्रोध को और भी बढ़ाकर देखने की इच्छा मुझे हुई। कुछ सुन्दर बच्चों को चिकोटी मारके रुलाकर तमाशा देखने की इच्छा कभी-कभी हम को होती है न? मैंने सोचा कि चौंटने के समान प्रश्नों के द्वारा पहले उसे रुलाकर फिर हँसाना है। प्रयत्न मेरी बातों में था।

"भारतीय काव्य इस बात के प्रमाण हैं कि कालिदास के समय से ही सौन्दर्य और यौवन से भरी अबलाएँ स्वयं धोखे की शिकार होती आयी हैं। शकुन्तला ने प्रेम में धोखा खाया। तुमने आज अपने लक्ष्य में धोखा खा लिया। इससे यह सिद्ध होता है कि इस देश की नारियाँ जीवन के किसी न किसी पक्ष में धोखा खाती हैं। क्या कभी इस देश की महिलाएँ किसी भी क्षेत्र में काम करने योग्य बन जाएँगी?"

उससे यह कहते समय मुझे हँसी आ गयी। मेरी इन बातों को सुनकर सुगुणा के लाल ओंठ हवा में हिलनेवाली

दाड़िम की कलियों के समान हिल उठे। लंबे चौड़े काले भौंरे के जैसे उसके चंचल नेत्र और भी लंबे हुए मानों कानों को स्पर्श करने जा रहे हैं। मुख पर क्रोध ऐसा चमका जैसे नये दर्पण में प्रतिबिंबित होनेवाले स्वच्छ चेहरे के समान दीख पड़ा। क्रुद्ध आँखों से उसने मुझे देखा।

उसने कहा—'आप के जैसे परिपक्व लेखकों से मैंने ऐसे अपरिपक्व विचारों की आशा नहीं की थी। यह तो सड़ी बासी धारणा है। मुझ जैसी महिलाओं की इच्छा है कि नये समाज के सामने आप सारगर्भित विचारों को प्रस्तुत करें। कालिदास का काव्य यही कहता है कि शकुन्तला के धोखा खाने का कारण भाग्य का अभिशाप है। आप दुष्यन्त की भूल को कारण न बताकर शकुन्तला के धोखा खाने पर दोष लगाते हैं। शायद आप चाहते हैं कि नारी जाति पर कोई न कोई दोष लगाते रहें।"

"सिर्फ़ मेरी बात नहीं, अरुणगिरीनाथ से लेकर शहर के लोगों तक कई की यही धारणा है। नारियों के बारे में बुरा कहना संसार के लिए नया नहीं। परन्तु मैं इस उद्देश्य से नहीं कहता हूँ। आप से गप्पे मारने की इच्छा से ही मैंने ऐसा कहा।"

सुगुणा ने कहा—"सिर्फ़ बातें करने में नहीं, लेखन में भी आप बकवास ही लिखते हैं। नहीं तो मेरा अल्लियूरणी गाँव के अनुभवों को किसी के द्वारा सुनकर इस प्रकार तितली नामक लघु उपन्यास के रूप में लिखने का आपको साहस हो सकता था?"

लेखक ने कहा—"क्यों नहीं हो सकता? हम लोग इस समाज को अपनी कलम से साहस देनेवाले हैं। मैं यह क्यों नहीं मान सकता कि मेरे विचार में जो बात आयी अथवा जो मेरी कल्पना में सृजित हुई अथवा बीत रही या भविष्य में बीतनेवाली घटनाएँ हों वही मेरे लेखन को शक्ति देनेवाली वस्तु हैं।"

सुगुणा ने कहा—"लिया जा सकता है। आप यह भूल जाते हैं कि संसार के किसी कोने में जो वास्तव में आपकी रचनाओं में होनेवाले पात्रों के समान जीवन व्यतीत करते हैं उनको भी इस से होनेवाले कष्टों को भुगतना पड़ता है। शायद आप इस पर गर्व करते हैं कि तितली लिखकर आपने समाज-सेविकाओं को तथा उनको समझे बिना उनको हानि पहुँचानेवाले अत्याचारियों को एक अच्छा पाठ सिखाया। लेकिन सचमुच वैसे गर्व करने योग्य परिणाम नहीं होते।

मैंने कहा—"वास्ताविक परिणामों पर आप ही प्रकाश डालिए। मैं समझ लूंगा।"

वह तुरन्त मेरे प्रश्न का उत्तर नहीं दे सकी। किसी के पास सुरक्षित रखने के लिये हम पैसा देते हैं तो वे निश्चित रहते हैं कि "हम तुरन्त वापस नहीं लेंगे।" ऐसा सोचकर अपनी आवश्यकता के लिये उसका खर्च करते हैं, लेकिन हमारे यकायक पूछने पर उनकी स्थिति जैसी होती है वैसी ही सुगुणा की स्थिति हो गयी। वह स्तब्ध होकर खड़ी थी मानो उसके पास उत्तर देने के लिये वाक्य ही नहीं हैं। उसकी वह

स्थिति देखकर मुझे हँसी आ गयी। मेरी हँसी से वह क्रुद्ध हो जायेगी ऐसा सोचकर मैं ने हँसी रोक ली। कोशिश करने पर भी उसने मेरी हँसी देख ही ली।

सुगुणा ने कहा—"जो हमारे लिये जीवन है वही आप के लिये हँसी का विषय है। हँसिये, खूब हँसिये। जब आप को हँसी आती है तब आप खुल कर हँसिये। हँसी और चिन्ता ये दोनों ही मनुष्य के शरीर रूपी आइने में छिपे हुए प्रतिबिंब है। उन्हें भी स्वयं छिपाने की कोशिश मत कीजिये।"

लेखक ने जवाब दिया—"आप का कहना मैं उसी तरह मानता हूँ। भगवान ने मनुष्य का सृजन ऐसा किया है कि उस सत्य को तिरस्कार नहीं कर सकते। मुख, आँख, भाल, मुँह और ओंठ ये सब ऐसे रहे हैं कि सच्ची और झूठी भावनाओं को छिपा नहीं सकते। अब वह धोखेबाजी करनेवाला मैं नहीं हूँ। सचमुच आप ही उसे कर रही हैं ऐसा लगता है। इसे सुनकर वह आश्चर्य चकित हो गयी।

"वह कैसे?"

"मुझे मालुम है कि अपनी कहानी में मैं ने जो घटनायें लिखीं उसके द्वारा आप के मन में कुछ न कुछ हुआ है। लेकिन आप उसे बाहर दिखाने से डरती हैं। धोखा भी देती हैं। अपने दुःख को समाज का दुःख मानकर बढ़ा चढ़ाकर दिखाती हैं। जिस प्रकार राजनीतिज्ञ और समाचार पत्रिकाएँ अपनी छोटी से छोटी तकलीफ़ को भी बढ़ा चढ़ा कर मंच पर दी हुई भाषण-कला द्वारा फैला देते हैं, मंडन और खण्डन

भी करते हैं—ऐसा लगता है कि आज आप भी उसी उपाय को अपनाती हैं।"

मेरा इस प्रकार का कहना सुनकर सुगुणा को और भी अधिक दुःख हुआ। उसके निर्मल मुख को देखकर ऐसा लगता था कि उससे उतने क्रोध से बातें नहीं करनी थी। मुझे भी दुःख हुआ कि सुगुणा जैसे फूल को मैं ने मुरझा दिया। थोड़ी देर हम दोनों मौन रहे।

दोनों को ऐसा लगा कि मुख्य विषय को छोड़कर साधारण सी बातों में समय गँवाया है। आपकी खोज में आई हुई इस लड़की का रात का भोजन हमारे घर पर ही है?—मुझ से यह पूछने की भावना से कमरे के दरवाजे पर खडी हो मेरी पत्नी ने मुझे अकेले में बुलाया। दरवाजे के बाहर अपना मुख दिखाकर, "जरा इधर आइये" इस प्रकार लड़कियों के बुलाने में कोई न कोई अर्थ जरूर होगा। हर एक मनुष्य के अपने घर के जीवन में इस प्रकार के कई अर्थ होते हैं।

"खोजकर घर आये हुए लोगों से खाने के समय तक रहेंगे या जायेंगे "ऐसा कैसे पूछ सकते हैं? वह भी इधर ही खायगी, ऐसा सोचकर खाने का प्रबन्ध करो। बाकी सब बाद में देखेंगे" इस प्रकार उठकर पत्नी से जाकर कह दिया।

पत्नी ने कहा—"कुछ स्वयं सोचिये। बातें समाप्त कर जल्दी आइये। इस प्रकार खोजकर आनेवालों के साथ दिन रात बातें करते रहना अच्छा नहीं।"

इस तरह मेरा आज का दिन ही दूसरों की भलाई के विषय में बीता है, मगर मेरी गृहलक्ष्मी मुझपर अधिक श्रद्धा दिखाती हुई भी मुझसे ज्ञान की बातें कहकर चली गयी। इन औरतों के शरीर और मन दोनों ही संदेह से भरे हुए हैं। कितना सत्य है कि अपनी पत्नी की फटकार से और बातों से मुझे मालूम हो गया कि मेरी खोज में आयी हुई लड़की एक सुन्दर युवती है।

अपनी पत्नी को रसोई-घर में भेजकर मैं फिर अपने कार्यालय के अंदर गंभीर होकर आया। दस या पंद्रह मिनट के अंदर ही इस लड़की से अपनी बातचीत बंद करनी है, मैंने मन को दृढ़ किया और उस से सब कुछ साफ़-साफ़ बताने का निश्चय कर लिया।

"अल्लियूरणी गाँव में आपको कुछ दुःख हुआ ऐसा आपने कहा था न? उसके बारे में और एक बार विस्तार से आप से मैं सुनना चाहूँगा। मेरी कहानी भी एक प्रकार से उससे प्रेरित है—ऐसा भी कहा गया था। उस विषय में भी विवरण के साथ कहिये। आप मेरी शिकायत का मुझे कुछ समाधान दे सकें तो तब मैं कहूँगी। बाकी सब बातें बाद होंगी ही।"

उसकी मुखभावना से ही मालूम पड़ा कि मेरी आवाज़ की गंभीरता उसने समझ ली है।

"साधारण रूप से कही जानेवाली बातें ही अब आप से कहती हूँ। बाकी सभी विषयों को जानने के लिये आपको मेरे साथ अल्लियूरणी गाँव एक बार आना होगा। आप

ऐसा न मानिये कि मैं आप पर अधिकार दिखा रही हूँ या आज्ञा दे रही हूँ। एक कहानीकार का सामाजिक भलाई में अपना भी कुछ कर्तव्य है, ऐसा थोड़ी देर के पहले आप ही ने कहा था। समाज में सुगुणा नाम से जानी जानेवाली मैं ही एक लड़की हूँ। मेरा विचार है कि मेरे जीवन में भी आप का हाथ है। ऐसा सोचने में कोई गलती नहीं होगी। शकुंतला के काल से लेकर आज कल की पीढ़ी तक की लडकियाँ या तो प्रेम में या लक्ष्य में धोखा खाती रही हैं, ऐसा आप ने कहा था। उस धोखेबाजी में न पड़ने के लिये मुझे समाज के मन के डाक्टर रूपी आप, कौन सी दवा बतलाते है? उस दवा को लेने के लिये मैं इसी क्षण तैयार हूँ।" उस सुगुणा नामक युवती ने ऐसा कहकर मुझे देखकर हाथ जोड़कर नमस्कार किया।

11. समाज के रोग

सुगुणा के इस प्रकार के कथन को सुनकर मेरे मन में उसके प्रति क्रोध नहीं हुआ, परन्तु सहानुभूति ही हुई। अपने नाम पर तितली उपन्यास के संबंध में जो पत्र आये हुए थे सबको मैंने सुगुणा को देकर पढ़ने के लिये कहा—वह उन पत्रों को बहुत उत्सुकता से पढ़ने लगी। दूसरे अथवा तीसरे पत्र में, "आदर्श की प्यासी सुगुणा को मेरी हार्दिक अनुभूतियाँ! आज कल भारत के गाँवों में निन्यानवे प्रतिशत लोग वडमलैपिल्लै जैसे पतित जीवन बितानेवाले हैं।"

सुगुणा ने पूछा—"कथा लिखनेवाले और कथा के बारे में अपना मत लिखनेवाले लोग इस प्रकार सत्य के एक अंश को छिपाकर या उसे बदलकर अपनी इच्छानुसार लिखें तो उसके लिये हम क्या करें? गाँवों में अच्छे लोग भी हैं, ऐसे उन लोगों को छिपाकर या भूलकर लिखें तो क्या कहना?" उस पत्र को आगे पढ़े बिना हाथ में रखकर सुगुणा ने मुझसे पूछा। मैंने हँसकर उसका उत्तर दिया—

"कथा में अच्छे लोग नहीं हैं ऐसा आप कैसे कह सकती हैं? तितली कथा की नायिका भी कई लोगों की सहानुभूति का पात्र है। उसके बाद रघुराम के जैसे आदर्शवाले कई मनुष्य भी कथा में आते हैं? इसका तात्पर्य यह हुआ कि इन पात्रों में उस कथा के सत्पात्रों की सराहना की गयी है। उन पात्रों के कष्टों, दुःखों और असफलता के लिये ये पाठक दुःखी हैं, यह बात इन पात्रों में स्पष्ट व्यक्त होती है। क्या आपको ऐसा नहीं लगता?"

"जैसा आप कहते हैं वैसा अनुभव हो सकता है, परन्तु संयोग से मैं अपने को इस कथा की नायिका समझती हूँ। इसलिए ऐसा अनुभव करने में कठिनाई होती है। कुछ कथाओं को पढ़ते समय उनमें अत्यधिक दुःख का अनुभव करनेवाले पात्रों से मैं तादात्म्य करती थी। यह मेरी आदत है। शरच्चन्द्र का गृह प्रवेश, कु.प.रा. का स्टूडियो कहानी आदि में आनेवाली असली और अभिनेत्री सीता के साथ तादात्म्य करके ही मैंने पढ़ा। आप की कभी लिखी हुई दो छोटी कहानियों को मैंने बार बार

पढ़ा, वैसे पढ़ते समय मैं कमरे को बंद करके एकान्त में फूट-फूटकर रोया करती थी। आप की वे दोनों कहानियाँ अब भी मेरे पास हैं। इन दो कहानियों के नारी पात्रों के दुःखों को अपना दुःख समझकर अभी भी उसका अनुभव कर रही हूँ।"

लेखक ने पूछा—"क्या मैं आपको रुलानेवाली उन कहानियों के नाम जान सकता हूँ? कल्पित रचनाओं के पात्रों के काल्पनिक दुःख को अपना निज दुःख समझनेवाले सच्चे लोगों की संख्या बढ़ती है तो वह उस लेखक की जीत है। इसके अलावा और भी एक विषय मेरी समझ में आता है। ऐसा मालूम पड़ता है कि इस के पूर्व भी मेरी रचनाओं को पढ़कर आप तितली उपन्यास में अपना दुःख और समस्यायें देखा करती थीं। जिन रोगों का इलाज डाक्टरों से भी नहीं हो पाता वैसे ही बहुत से रोग हमारे समाज में हैं। जब कोई लेखक पाठकों के सम्मुख उन सामाजिक रोगों को प्रस्तुत करता है तब पाठकों का उस रचना और रचना के पात्रों से तादात्म्य होता है। हम लोग चाहे सामाजिक रोगों का इलाज नहीं कर सकें, पाठकों को उसीकी याद दिलाते रहते हैं। इस देश में आजकल प्राचीनता-अर्वाचीनता और दारिद्र्य से उत्पन्न बहुत से रोग हैं। मैं कह नहीं सकता कि अल्लियूरणी गाँव में इन में से किस प्रकार के रोग से आप पीड़ित हुईं। आप भी संकोच के बिना अपने अनुभव को कहें तो अच्छा होगा..."

सुगुणा ने कहा—"मुझ से मिलने के पहले ही संयोग से आप ने मेरे अनुभवों को लिख दिया है। मैं एक बड़े शहर के

एक, प्राइवेट स्कूल में अध्यापिका थी। उस समय आपकी "पथिक" नामक छोटी कहानी मैंने पढ़ी। रो-रोकर ही मैंने उसे पढ़ा भी, स्पष्ट कहती हूँ। उस समय के मेरे इस जीवन की घटनायें भी लगभग उस की घटनाओं से मिलती जुलती थीं। मेरी इच्छायें बढ़ती थीं। उसी समय इच्छाओं को ही अपराध माननेवाले सामाजिक वातावरण में मैं रहती थी। उस कहानी में मेरा मन लगने का यह भी कारण है।

बाद में आप की "मोती सराय" नामक छोटी कहानी को पढ़कर मेरा मन ऊब गया। उस कहानी में आयी हुई कनकम नामक लड़की पांपन पुल के ऊपर इन्डो सिलोन एक्सप्रेस जाते समय रेल का दरवाजा खोलकर सागर में कूद गयी, इस प्रकार कहानी को खतम कर दिया था। एक बार मैंने उसी स्थान पर उसी रेल गाडी में जाते समय यही कार्य कर अपने जीवन को समाप्त करने की, साहस के साथ योजना भी बनायी थी। लेकिन वैसा नहीं हुआ। इस में एक भिन्नता भी है। मोती साराय के पात्र के समान पागलपन में मैं ने आत्महत्या की योजना नहीं की थी। स्वयं बुद्धि के साथ ही उसे करने के लिये मैं ने सोचा। उस समय मेरी एक मात्र इच्छा थी कि इसी समय मरना है। एक इच्छा के बदले दूसरी इच्छा करने से भी संसार में पागल ही कहा जाता है। इस बात को ईमानदारी से कहना हो तो मुझे स्वीकार करना पड़ेगा कि मैं वैसी ही पगली हूँ।

आपकी "पथिक" कहानी का पात्र उस अध्यापिका की जो विचित्र इच्छायें थीं वैसी इच्छायें भी मुझे कभी कभी हुईं।

मोती सराय में आनेवली कनकम के समान समुद्र में कूद कर मरने की इच्छा भी मेरी हुई। कुरिंजिमलर की नायिका पूरणी के समान पवित्र विचारों से जीने की इच्छा मुझे कई बार हुई। उसी कथा में आनेवाली दूसरा नारी पात्र मंगलेश्वरी की पुत्री वसन्ता सिनेमा की अभिनेत्री बनकर जगत् को अपना सौंदर्य दिखाना चाहती है न? वैसी इच्छा भी मुझे कभी-कभी हुआ करती थी। अंत में जो अनुभव मुझे हुये वे सब तितली की नायिका को जो हुए, वे ही अनुभव थे।"

सामने कुर्सी पर बैठी हुई सुगुणा इस प्रकार उत्साह से बोल रही थी। जिन कहानियों का उल्लेख करती थी उनकी रचना की प्रेरणा को मैंने स्मरण करने का प्रयत्न किया। मेरी विभिन्न रचनाओं की नायिकाओं ने अपने जीवन के विशिष्ट संदर्भों में जिन कष्टों का अनुभव किया उन सभी कष्टों को एक सुगुणा (एक नायिका) ने ही अपने जीवन के भिन्न-भिन्न समयों पर अनुभव किया है। ऐसे विभिन्न अनुभवों वाला जीवन रोचक अवश्य होगा। उसी समय मेरी पत्नी ने आकर दोनों को खाने के लिये बुलाया। दोनों खाने के लिये अंदर गये, खाते-खाते मैंने उसको रुलानेवाली और आत्महत्या के लिये प्रेरित करनेवाली कहानियों को पहले जिस रूप में रचा था उसी रूप में स्मृतिपटल पर लाया। कहानियों में मैं ने सामाजिक कुरीतियाँ संबंधी समस्याओं को उठाया था।

12. उसको रुलानेवाली कहानी

जिस प्रकार हाथ में कलाई पर बिना चाबी दी हुई घड़ी चल रही थी। वैसे ही जीवन में लड़कियाँ भी तितली की तरह रास्ते में इधर-उधर आ जा रही थीं। फूल बेचनेवाले लड़के, रिक्षा गाड़ियाँ, रास्ते चलनेवाले लोग, मोटर गाड़ियाँ और रास्ते में अनेकों प्रकार की आवाज़ करती हुई गाड़ियाँ, ये सब आँखों में वेग से घूम फिर रहे थे।

नव गुलाब के समान सुन्दर एक षड़वर्षीय बालिका ने हाथ में सिंदूर की डिबिया लेकर—"टीचर! टीचर! किवाड़ खोलिए" कहती हुई सुगुणा के द्वार को खटखटाया।

सुगुणा ने अपने कंधे से फिसलनेवाली साड़ी को थामकर ठीक करते हुए किवाड़ खोला।

सिंदूर की डिबिया के साथ आयी हुई लड़की ने कहा—"टीचर, सिंदूर लीजिए। मेरे घर में कोलु* है....मैं कृष्ण वेश पहनकर नृत्य करनेवाली हूँ....उसे देखने के लिए आप ज़रूर आइये—"

जब उस बच्ची ने मुझ से सिंदूर लेने के लिए कहा तब मेरे हृदय पर चोट लगी। आँखों में आँसू भी आ गये।

मैं ने कहा—"मैं सिंदूर नहीं लगाउँगी बच्ची, तुम्हारे नृत्य को देखने के लिए ज़रूर जाऊँगी, तुम तो अच्छी लड़की हो न? अब दूसरी जगह जाकर सिंदूर दे आओ!....मुझे नहीं चाहिए...."

---

* तमिलनाडु में दशहरे के दिनों में घर में गुड़ियों को सजाकर रखते हैं और शाम को अडोस पडोस की स्त्रियों को आमंत्रित कर कुङ्कुम तथा पानसुपारी बाँटते हैं। इसको कोलु कहते हैं।

"यह क्या है टीचर! मेरी माँ आपकी जैसी ही हैं! माँ दिन भर दो या तीन बार साबुन से मुँह धोकर सिंदूर की बिन्दी लगाती है न? आप क्यों नहीं लगातीं?"

"क्या करना? मुझे वह सौभाग्य प्राप्त नहीं है बच्ची!"

कुंकुम की बिन्दी लग जाय तो आपका मुख कितना अच्छा लगेगा, मालूम है? ज़रा बैठिए टीचर! मैं ही लगाये देती हूँ।

स्फूर्ति से भरी हुई उस बच्ची के विशाल नेत्रों ने याचना की भावना से मुझे देखा। मुझे ऐसा लगा कि उसको निराश करना पाप है।

मैं फूल, हल्दी और सिंदूर इन तीनों को ही छोड़ चुकी हूँ। यह बच्ची उस मंगलमय और पवित्र जीवन की ओर बढ़ रही है। अपने दुःख को इसे समझाने की अपेक्षा इसकी प्रार्थना को स्वीकार करना उचित है। ईश्वर और बच्चे को धोखा नहीं देना चाहिए। मैंने सुना था कि इस प्रकार धोखा देते समय हम अपने आपको धोखा देते हैं।

पाप-पुण्य, उचित-अनुचित की मुझे चिन्ता नहीं। मैंने निश्चय कर लिया कि वह लड़की निराश होकर न लौटे।

नीचे बैठकर मैं ने अपना माथा ऊपर उठाया। बालिका की मृदुल उँगलियों ने सिंदूर की डिबिया को खोला। मेरा भाल पुलकित हो गया। मेरे सारे शरीर में एक प्रकार का उत्साह प्रवाहित हो उठा। शरीर रोमांचित हो गया। उस शिशु के मन की तृप्ति के लिए मैंने अपनी भावनाओं को दबाकर हँसने का प्रयत्न किया।

पढ़ाते समय प्रतिदिन असंख्य बच्चों को मैं स्कूल में देखती हूँ। तब मुझे साधारण शान्ति ही मिलती थी। लेकिन....? यह बच्ची। ....देवलोक के सौन्दर्यमय पुष्प के समान लगी। यह हृदय की निराशाओं को मिटाकर आशा और इच्छा को बढ़ानेवाला निर्माण-गृह है।

अनार की कलियाँ जैसी वे छोटी उँगलियाँ मेरे शून्य भाल पर खेलीं। सिंदूर मेरी भृकुटियों से होकर नीचे गिर गया।

"कैसा है टीचर? जाकर आईने में देखिए....! मैं ने अच्छी तरह लगाया है।"

"ठीक है! ज़रूर देखूंगी! तुम हो आओ।

आप कोलू को ज़रूर आइए। भूलना मत।"

"जरूर आऊँगी। आकर तुम्हारे नृत्य को देखना है न?"

भूमि पर लुढ़कती हुई चंपक फूल की गेंद की तरह वह लड़की मुड़ कर देखती हुई उस सिंदूर डिबिया के साथ नीचे उतर कर दूसरे घर के अंदर चली गयी। मैं किवाड़ बंद करके फिर खिडकी के पास कुर्सी पर बैठी। सामने कुर्सी पर पाठशाला के निबंध की कापियाँ थीं। उसके पास लाल रंग की एक दवात और कलम थीं। घड़ी में समय सात हुआ था। रोज ट्यूषन के लिये आनेवाली लडकियाँ अभी तक नहीं आई।

मेरे लिये इस दुनिया में कोई भी ऐसी चीज़ नहीं जिसकी मैं चिंता करूँ। मेरी आशा का एक मात्र आधार है सफ़ेद साड़ी और चप्पलें अच्छी तरह पहन कर पाठशाला जाकर आना। जीवन बीतता गया, साल भी बीतते गये;

लेकिन अभिलाषाएँ समाप्त नहीं हुईं। मन से विधवा के रूप में और शरीर से अध्यापिका के रूप में काल बीत गया। काल के साथ मैं भी जा रही हूँ। कारावास जैसा जीवन। सिर्फ एक के लिये इतना बड़ा घर अनावश्यक है। छिन्न-भिन्न जीवन का मैं एक छोटा सा बिंब हूँ।

इस में आश्चर्य और साहस क्या है? जो लोग जी नहीं सकते उनको और समाज से तिरस्कृत लोगों को क्या मृत्यु एक संजीविनी नहीं है?

दरवाज़े पर फिर भी किसी की आवाज़ सुनाई पड़ी।

"टीचर। टीचर। ....दरवाजा खोलिये टीचर।"

जाकर दरवाजा खोल दिया। मेरी छात्रायें राजम और कुंजू आ गयी थीं।

"यह क्या है री? तुम लोग पढ़ने के लिये पुस्तक नहीं लायी?"

"नहीं टीचर।"

"तब तुम दोनों किस के लिये आयीं हो?"

राजम और कुंजू दोनों ने उत्तर दिये बिना मेरे मुख की ओर देखा। फिर दोनों ने एक दूसरी को देखा।

"क्या है री? मेरे मुख में कुछ लिखा है क्या? उत्तर दिये बिना दोनों इस प्रकार देख रही हो.... ?"

"नहीं टीचर....आप एक दिन भी सिंदूर नहीं लगाती थीं न?....आज ही लगाया है....?"

उसी समय मुझे अपनी गलती का बोध हुआ। उस लड़की के जाने के बाद तुरंत ही मुझे उसे पोंछना था। मैं भूल गयी। मूझे शरम-सी आयी।

"ओ! बात यह है क्या?.... यह.... एक बच्ची आकर जबरदस्ती लगा गयी... ।"

ऐसा कहकर जल्दी से उसे मैं ने पोंछा।

"टीचर आपने उसे क्यों पोंछा? आप के माथे पर वह बहुत सुन्दर लगता था।"

"ठीक है। तुम दोनों किस कार्य के लिये आई हो? बताओ!"

"जी! नवरात्रि खतम होने तक घर पर कोलू के लिये रहना है। हमारी माँ ने कहा कि "ट्यूषन" नहीं जाना...।"

"ठीक है! न आना....तब सात आठ दिन नहीं आओगी-है न?"

बालों में चमेली का फूल लगाये हुए राजम और कुंजू गली में मुड़कर ओझल हो गयीं।

मैं ने तिलक मिटा दिया। फिर भी मन में एक भ्रम था। उस बच्ची की मृदुल हाथ की उँगलियों से अपने माथे पर तिलक लगवाने की एक भावना मेरे मन में उठी। बाँध को तोड़कर आनेवाले जल प्रवाह के समान विचार मन में अजस्र गति से उमड़ने लगे।

कोई भी स्त्री अविवाहित रहकर भी जीवन बिता सकती है। शादी के बाद पति की मृत्यु से पहले मर भी सकती है।

लेकिन सुहागिनों के बीच "विधवा" होकर जीवित रहने के समान दूसरी कोई यातना नहीं है। कहानियों में विधवाओं को जितना दुःख प्राप्त होता है उससे अधिक दुःख विधवा को वास्तविक जीवन में भुगतना पड़ता है। युवतियों से भरा महिला विद्यालय पुष्पशय्या के समान है। उस में मैं ने नौकरी स्वीकार कर ली थी। अतः यह भी एक प्रकार से फूलों की सेज पर लेटने के समान था। उन लड़कियों के मुखों को देखकर ही मैं चारित्रिक कलंक और आत्महत्या से बच गयी।

मेरे लिए और भी दस-बारह दिन की छुट्टियाँ हैं। राजम और कुंजू ट्यूषन के लिए नहीं आयेंगी ऐसा कहकर चली गयीं।

अकेलापन! अकेलापन!! बड़े घर में, रहते हुए मेरे छोटे मन में भावना की लहरें उठती थीं। न जाने वे लहरें किस किनारे पर टकराकर तड़पेंगी? यदि मन को दूसरों के कोलाहल में डुबा दिया जाय, ताकि सोचने के लिये अवसर ही न मिले, तब तो जीवन की, भयंकरता दूर हो जायेगी, जैसे चादर ओढ़ने से सर्दी दूर हो जाती है।

मुझे नींद आयी। नौ बजे थे। अभी प्रतिदिन का सोने का वक्त नहीं था। लेकिन आज क्या हुआ मालूम नहीं। वैसे कुर्सी पर मैं ने सिर झुका लिया।

खाना?....आज इसकी मुझे याद भी नहीं आयी। खिड़की से आयी हुई पन्नीर पेड़ की ठंडी हवा मुख से खेलने लगी। उस लड़की ने अपनी मृदुल उँगलियों द्वारा मेरे माथे

पर जो बिंदी लगायी वही शीतल पवन के इस मधुर स्पर्श का एकमात्र उपमान हो सकती है। मैं सोचते-सोचते अंत में सो गयी। नींद में मुझे एक स्वप्न आया।

मैंने अपने माथे पर काले रंग की बिंदी लगायी। बहुत सुगन्धित चमेली पुष्प की लड़ियों से केशों को सजाया, गुलाबी रंग की जारजेट साड़ी पहनकर हाथ में नारियल और फल के साथ मंदिर में अम्बा के सानिध्य में गयी।

मंदिर के द्वार पर किसी एक लड़की ने बहुत जोर से बुलाया। मैं ने मुडकर उसकी ओर देखा। हाथ में कटोरी लिये वह लड़की हँसती हुई खड़ी थी।

उस लड़की ने कहा—"टीचर! टीचर! अब आप कितनी सुन्दर लगती हैं मालूम है? मेरी माँ भी इतनी सुन्दर नहीं....।"

वह लड़की विस्फारित नयनों से मुझे देख रही थी, मानों मेरे सौंदर्य की सीमा बाँध रही हो।

जब बच्ची ने उसी प्रकार हाथ फैलाया तब कटोरी नीचे गिरी, तेल फैल गया।

"हाय! टीचर तेल फैल गया। मेरी 'माँ ने' कहा कि मंदिर के दीप में तेल डालकर आना.....आज घर जाकर मार खानेवाली हूँ....।"

मैंने कहा माँ से जाकर कह देना, मैंने दीपक में तेल डाल दिया है।

उसने कहा—"झूठ नहीं बोलना चाहिये टीचर। झूठ बोलें तो अम्बा आँखों को फ़ोड़ देगी। फिर ऐसा कहना पाप है....।"

संसार भर में ढूँढने पर भी न मिलनेवाली भक्ति उस लड़की के चेहरे पर झलकती थी। सत्य दिखाई पड़ता था।

मैंने कहा—"रोओ मत! द्वार पर तेल की दूकान है। यह लो, इन पैसों का तेल खरीद कर ले आओ.....तब तक मैं तुम्हारे लिये इधर ही रहूँगी।"

मैंने दस पैसे उस बच्ची के हाथ पर रख दिये।

वह लड़की फुर्ती से मंदिर के द्वार से दूकान की ओर दौड़ी, तब ऐसा लगा मानों एक स्वर्ण दीपक के हाथ पैर लग गये हैं और वह दौड़ रहा है।

वह कटोरी में तेल लेकर जल्दी लौटी। मैं लड़की का हाथ पकड़कर अम्बा के सान्निध्य में गयी। मंदिर की घंटी पाप पर पड़नेवाले चाबुक के समान सुनाई पड़ी। इतने में वह स्वप्न समाप्त हो गया।

नींद से मैं जाग गयी। दूर पर गिरजे की घंटी समय की सूचना देती हुई बारह बार बजा कर चुप हो गयी। घंटी बजना समाप्त होने के बाद भी उसकी ध्वनि कानों में गूंजती रही। स्वप्न समाप्त हो गया। स्वप्न की मधुर स्मृति मेरे मन से अब तक नहीं हटी। ध्वनि समाप्त हो गयी। इच्छा समाप्त नहीं हुई। मन स्तब्ध हो गया। परन्तु स्मृतियाँ स्तब्ध नहीं हुई। आश्चर्य ही है।....मैंने थके मन के साथ कहा।

बत्तियों को बुझा, बिस्तर बिछाकर मैं लेट गयी। चारों ओर अंधकार छा गया था। खिड़की के बाहर रास्ते की बत्तियाँ सोये बिना कर्तव्य पालन करनेवाले जवान के समान जल रही थीं। मेरे चारों तरफ़ अँधेरा था। अँधेरे के चारों ओर मैं। नींद नहीं आयी। मैंने जबरदस्ती सोने का प्रयत्न किया। चिन्ता और नींद में क्या वैमनस्य है, मालूम नहीं। नींद ने आने से इनकार कर दिया।

दूसरे दिन सबेरा हुआ। फिर दोपहर हुआ दोपहर से अपरान्ह हो गया और फिर अपरान्ह शाम भी हो गया।

"टीचर।....टीचर।....दरवाजा खोलिये टीचर।"

वरदान के लिए तरसनेवाले भक्त के समान दौड़कर मैंने दरवाजा खोल दिया। वही दैविक बच्ची हाथ में सिंदूर की डिबिया ले मेरे सामने खड़ी थी।

पहले की तरह मैं नीचे बैठी। लड़की ने हँसकर मेरे माथे पर अपने मुलायम हाथ की नन्हीं उँगलियों से सिंदूर लगाया। मेरे माथे पर लगाते ही मेरी नसों में बिजली सी दौड़ गयी। उसको बहुत खुशी हुई। मैं भी उसके साथ हँसने लगी। मुझे कोलू के लिए बुलाकर वह लड़की चली गयी।

खुले हुए दरवाजे को मैं ने बंद किया। हृदय को भी बंद कर सकें तो कितना अच्छा होगा? मैं फिर भी खिड़की के पास कुर्सी पर बैठी रही।

रास्ते के दृश्यों को देख रही थी। आभूषणों और सुन्दर पुष्पों से सज्जित महिलायें दूसरे घरों में जाकर कोलू का प्रसाद

लेकर लौट रही थीं। राजम और कुंजू ने किवाड़ खट-खटाया। वे छायायें केशों में फूल लगाकर अलंकार करके ऐसी आयी थीं मानों किसी विवाहोत्सव में जानेवाली हों।

यह सब कोलू के लिए अपने घर में बनाया गया है, यह कहकर, कुछ पकवानों को रख, वे चली गयीं। रास्ते में फूल बेचनेवाले की आवाज़ सुनायी पड़ी।

"चमेली का फूल। चमेली का फूल आधा आना ही है....।"

"मेरे हृदय के एक कोने में एक छोटी सी इच्छा उठी।"

"अरे, फूलवाले! इधर लाओ।"

यह साहस मुझमें कहाँ से आया? मुझे खुद नहीं मालूम। मैंने साहस के साथ उसे बुलाया।

"कौन है? आपने ही बुलाया क्या?"

"हाँ, आओ...।"

एक विचित्रदृष्टि से देखते हुए टोकरी को मेरे सामने रखा।

चार हाथ की अच्छी चमेली चुनकर देना।

वह फूल दे, मैं पैसे चुका दूँ। यही तो व्यापार है लेकिन ऐसा नहीं हुआ। उसने मुझ से एक प्रश्न पूछा—

"क्यों जी! आप के घर में कोई आये हैं क्या?"

मैंने पूछा—"क्यों किस लिये तुम इस प्रकार पूछते हो?"

फूलवाले ने कहा—"नहीं। आप रोज़ नहीं खरीदतीं, आप ने आज ही खरीदा। इसलिये मैंने पूछा। आप फूल नहीं रखती, है न?"

फूल के साथ एक अर्थ भरा प्रश्न भी मुझे देकर वह चला गया। मेरे हृदय के अंतराल में हिलनेवाली इच्छा के कोंपल काँप उठे। उसके दिये हुए इन फूलों को रखने के लिये स्थान हैं? जवाब था धरती तो है?.... उसे रखने के लिए मेरे यहाँ जगह कहाँ है? कहाँ रखूं? हृदय में रखने पर इन के ताप से मेरा हृदय जल जायगा। इस प्रकार थोड़ी देर मेरे मन में वाद-विवाद चल रहा था।

अंत में मेरी इच्छा की ही जीत हुई। दूर चली जाने-वाली उसकी अवाज़ के समान उसका प्रश्न भी क्षीण होता हुआ विलीन हो गया।

अपने घर के किवाडों को अंदर से बंद किया। अंदर जाकर मैं ने अलमारी खोली। वर्षा ऋतु में नदी के प्रवाह के समान मेरी इच्छा मन को छोटा कर स्वयं बलवती होती जा रही थी। अपने मन के और अपने प्रयत्न के बावजूद, वह इच्छा अधिक तीव्र हो रही थी। सामने का दर्पण मेरे यौवन और सौंदर्य को दिखा रहा था। जो विवाह कभी होकर, फिर कभी मिट भी गया था। उस समय खरीदी हुई साड़ी को लेकर काँपते हाथों से पहन लिया। अलमारी के अंदर पेटी में रखे हुए आभूषणों को मैं ने पहन लिया। कानों में हीरे का भूषण चमक रहा था। गले में नेक्लस और मालायें, हाथ में चूडियाँ, नाक में नथनी और माथे पर सिंदूर का तिलक। सिर पर जूडा बाँध कर चार हाथ की चमेली के फूलों की माला को चन्द्रमा के समान बहुत सुन्दर ढंग से मैंने रखा। मैं एक सुहागिन बन गयी, इसे वह दर्पण दिखा रहा था।

सिर पर फूल रखते ही हाथ कुछ काँपे। फूलवाले का वह प्रश्न....? मन के अंदर बिजली के समान काम कर रहा था।

यह दर्पण धन्य है। मैं आभूषण रहित थी और श्वेतवस्त्र पहना करती थी तब मैं मरुस्थल के समान थी। अब दस मिनटों में यौवन से भरी सुहागिन हो गयी, जिसको वह दर्पण दिखा रहा था। इसी रूप में मैं रास्ते से जाऊँ तो मेरे कसम खाने पर भी लोग मुझे विधवा नहीं मानेंगे। बहुत भारी रेशमी साड़ी पहनने से ऐसा लगा मानों किसी ने आलिंगन किया हो। अनजाने ही मेरे मुँह पर अपने आप एक मुस्कुराहट आ गयी। दर्पण में देखने पर मेरी सूरत ने मुझे ही धोखे में डाल दिया।

अलमारी को बंद कर के दर्पण के सामने से हटकर हॉल में आ गयी। हाथ की घड़ी में समय ठीक तरह नहीं दीख पड़ा। बत्ती जलाकर समय देखा। समय साढ़े सात हुए थे।

थोड़ी देर में मुझे लगा कि जीवन से लिपटे हुए मेरे सभी अमंगल मुझे छोड़कर चले गये हैं। मैं इस विचार में तैर रही थी कि अभी तक मुझे अप्राप्त सभी सौभाग्य पूर्ण रूप से मिल गये हैं और मैं सुमंगली के रूप में जीवन के हरे भरे एक पहाड़ पर खड़ी हूँ। सिर से पैर तक एक प्रकार की खुशी फैल गयी। मैं स्वयं अपना सौभाग्य बनाकर खड़ी हूँ।

मेरे हाथ की चूड़ियाँ खनकने लगीं। कान के आभूषण की चमक पानी में सूरज के प्रकाश के समान दीख पड़ी। जाकर खिड़की के पास की कुर्सी पर बैठी। घर की सभी

बत्तियाँ जल रही थीं। रास्ते की ओर की बड़ी खिड़की, पूर्ण रूप से खुली हुई थी। उस प्रकाशमय पानी के बीच मंगल विचारों की नाव में कहीं अदृश्य जीवन की पूर्णता की ओर बही जा रही थी।

मन के किसी एक कोने को छोड़कर बाकी सभी जगह मौन रूप से यह घोषित हो रहा था कि "मैं सौभाग्यवती हूँ।" पैर में अगर काँटा घुस जाय तो ईंट को गरम करके उस गर्मी से पैर के उस स्थान को सेंकें तो कितना सुख मिलता है? उसी प्रकार यही सौभाग्य स्वप्नावस्था में मेरा सारा शरीर पुलकित कर रहा था। मैं खुशी की अंतिम सीमा पर जाकर खड़ी थी।

निद्रावस्था और जाग्रतावस्था के बीच की स्थिति में मधु पिए हुए भ्रमर के समान रास्ते की ओर कुछ देखा और कुछ अनदेखा करती हुई कुर्सी पर बैठी रही। खिड़की के पास रास्ते से जानेवाले कोई दो आदमी किसी के बारे में अपने आप बहुत ज़ोर से बोलते जा रहे थे।

"अरे! क्या वह नये वैधव्य लक्षणों के साथ नीचे के घर में ही रहती है?....नहीं, फूल धारण करके तिलक लगाकर साड़ी पहनकर चमकती फिरती है।"

किसी के बारे में अपने साथ के आदमी से वह बोल रहा था।

मेरी छाती दहल गयी। सिर में बड़ी पीड़ा-सी हुई। कुर्सी से उठी। तुरन्त जाकर बिजली के मेनस्विच को बंद कर दिया। घर में अँधेरा छा गया। मेरे गले की मालायें साँप के

समान लगने लगीं। रेशमी साड़ी शरीर पर ही नहीं है। चाबुक की मार से जो दर्द होता है इसी प्रकार की वेदना मेरे शरीर में होने लगी। मेरी तात्कालिक सौभाग्य नामक स्वप्नावस्था डूब गयी। मन से अमंगली होकर शरीर से सुमंगली बन सकेगी क्या? साड़ी को दूर फेंक दिया। आभूषणों को भी निकाल कर एक कोने में डाल दिया। "अँधेरे घर के एक कोने में इच्छा से प्राप्त मेरे तात्कालिक सौभाग्य को नष्ट करनेवाला वह कौन है? कोई एक पथिक।"

इस कहानी को पढ़कर सुगुणा रोई थी। "मोती सराय" नामक मेरी और एक कहानी ने उसे आत्महत्या करने के लिए भी प्रेरित किया था। जिस के पढ़ने से सुगुणा आत्महत्या करने को तैयार हो गयी थी उस कहानी को आगे देखेंगे।

13. उसको प्रेरणा देनेवाली कथा

सुगुणा ने कहा "जिस मोतीसराय" कथा को पढ़कर मैंने आत्महत्या करने का प्रयत्न किया था, उस कथा को भी पढ़िये।

डाक्टर की सलाह के अनुसार मुझे मदुरै छोड़कर बाहर रहना पड़ा। डाक्टर ने कहा—"अधिक काम से आप का स्वास्थ्य बिगड़ गया है आप कहीं जाकर समुद्र तट पर कुछ दिन रह आइये।"

संकट काल में मित्र को छोड़कर, झूठे मित्र के समान चैत्र की धूप में तपने रामेश्वरम की ओर गयी।

मुझे समुद्र तट पर एक सुविधा जनक घर किराये पर मिल गया। घर की छत पर बालकनी के पास आराम कुर्सी डालकर बैठने पर बहुत अच्छी हवा मिलती थी। जो घर मुझे मिला उसकी एक और विशेषता थी। मोती, शंख आदि समुद्र से प्राप्त सभी चीज़ों को बेचनेवालों की दूकानों से भरी एक छोटी सी गली पास ही थी। समुद्र के पास रहनेवाली उस गली का नाम "मोती सराय" है।

शामको बालकनी पर बैठकर समुद्र की हवा, समुद्र, मोती सराय का कोलाहल भरा हुआ दृश्य इन तीनों को देखते हुए मन में उठनेवाली कल्पना के सुख का भी साथ साथ आस्वादन करना मुझे बहुत रोचक लगा।

समुद्र के पासवाले गाँवों में समय बहुत जल्दी बीतता है, जल्दी अँधेरा भी छा जाता है। मेरा घर समुद्र के समीप एक कोने में रहने के कारण जल्दी मंदिर के पासवाले होटल में जाकर भोजन कर आना ही मेरी आदत हो गयी। रात में नौ या साढ़े नौ तक कुछ न कुछ पढ़कर सो जाया करता था।

उस दिन हमेशा की अपेक्षा शीघ्र भोजन समाप्त करके लौटा। आकाश में काली घटायें छा गयी थीं। अतः वर्षा का भय था। बरसात आने पर बहुत मुश्किल होगा यही सोचकर उस दिन शीघ्र ही लौट आया।

समय पौने आठ। इन्दो-सिलोन-एक्सप्रेस यात्रियों को लेकर रोमश्वरम आनेवाली रेल गाड़ी आधे घंटे पहले आ चुकी

थी। इधर-उधर पड़ी हुई बारिश की बूँदों ने मेरे वस्त्रों को भिगो दिया था।

मैं घर के पास आ गया। ऐसा लगा कि द्वार की सीढ़ियों पर कोई बैठा है। जब मैं सीढ़ियों पर चढ़ा, तब एक युवती वहाँ दिखाई पड़ी जो अपने चूड़ीवाले हाथ में सूट्केस पकड़े थी।

मुझे आश्चर्य हुआ। किवाड़ खोलने के लिये मैंने चाबी निकाली, लेकिन हाथ काँप गया। "आप कौन हैं?" थोडी ऊँची आवाज़ में पूछते हुये मैंने द्वार की बत्ती जलाई।

उसने कहा—"जी। नमस्ते....आप ही लेखक हैं....?"

ऐसा लगता था कि अभी अभी वह युवती रेल से उतरकर आयी है। उसका नमस्कार स्वीकार कर मैंने पूछा, "आप कौन हैं? आप को कैसे मालूम हुआ कि मैं यहाँ हूँ?"

यह पूछकर मैंने लेखक के नाते पहली दृष्टि से उसके रूप को देखा। बहुत सुन्दर थी। उसका रूप आकर्षक था। आँखें, ओंठ, भृकुटियाँ सब बहुत सुन्दर हैं, वह सुन्दरी हाथ में पेटी पकड़कर खड़ी हुई थी।

उसने कहा—"मैं आप को जानती हूँ। आपको याद है आप की कथाओं की प्रशंसा करके कभी-कभी एक युवती पत्र लिखती थी न? आप ने भी उसको पत्र लिखा था।"

मैंने कहा—"ओ! याद है। आप का नाम कनकम है न?"

उसकी हँसी गूँथी हुई चमेली की कलियों के समान थी।

"जी हाँ। कल सुबह ही मदुरै में पता चला कि आप यहाँ हैं। तुरन्त आपकी खोज में मैं यहाँ आयी।"

मैं ने पूछा—"आप अकेली ही आ गयीं क्या?"

उसने कहा—"आप ऐसा क्यों पूछते हैं?"

उस सुन्दर युवती ने विस्फारित नेत्रों से मुझे देखा। मेरे मन में भय और विस्मय की भावनायें बारी-बारी से उठीं।

मैंने किवाड़ खोले। जो महिला गाँव और घर ढूँढकर उतनी दूर से आयी है उसे तुरन्त कैसे वापस भेजा जा सकता है।

उसने कहा—"यह घर लेखकों के लिये ठीक है। इस घर में रहनेवाले आप भाग्यशाली हैं।"

इस तरह कह कर वह हँसती हुई पेटी के साथ मेरे पीछे-पीछे घर के अंदर आ गयी।

मैं दुविधा में पड़ गया। ऐसी कल्पना भी नहीं की जा सकती कि कोई युवती एक एकाकी युवक लेखक से मिलने आती है। क्या मैं स्वप्न देख रहा हूँ? नहीं तो, नीले रंग की वायिल साड़ी पहनकर, हाथ में चूड़ियाँ पहनी हुई यह महिला ही मुझे स्वप्न दिखलाती है क्या? इस से क्या कहूँ? कैसे इसका स्वागत करूँ?

मेरी समझ में कुछ भी नहीं आया। लाचार होकर मैंने कहा—"आप खड़ी क्यों हैं? पेटी को उस कोने में

रखकर कुर्सी पर बैठ जाइये। उसके उत्तर के रूप में उसने मुझसे पूछा—

"ऐसा लगता है कि इस घर में शायद आप अकेले रहते हैं।" यह कहते हुए उस महिला ने पेटी खोली। उसने कुछ केले और चार-पाँच मुसंबि मेरे सामने मेज़ पर रखकर कहा—'लीजिये'।

मैंने उससे पूछा—"ये सब क्या है? मुझे आप अपने स्नेह से संकट में डाल रही हैं?" बोलने के लिए उसका मुख देखता हूँ तो मेरे ओंठ भी अनायास मुस्कुराने लगते हैं। न जाने उस मुख में कौन-सा आकर्षण था। उस शक्ति ने दर्शकों को हँसाया। मेरे सामने कुर्सी पर वह बैठी।

मैंने पूछा—"कनकम, क्या आप खाना नहीं खायेंगी यहाँ पास में होटल नहीं है। मंदिर के पास वाले होटल में भोजन करना है।

उसने कहा—"परवाह नहीं। आते समय मैं खाना खाकर ही आयी हूँ।

मैं ने कहा—यहाँ मैं अकेला हूँ। आप के रहने के लिये मंदिर के पूर्व द्वार पर 'मुकुन्दरायर धर्मशाला' सुविधाजनक है। आपको वहाँ ले जाकर जगह का प्रबंध करा दूँगा, कल हम बैठकर बात करेंगे।"

मेरे मन में भय था कि मुझसे अकेले में बातें कर रही है। यह दुनिया बुरी है, बहुत बुरी है। ताड़ के पेड़ के नीचे खड़े होकर दूध पीने पर भी दुनिया को 'ताडी' ही दिखायी देगी।

उसने पूछा—"क्यों? ऐसा लगता है, अगर मैं नहीं जाऊँ तो क्या आप हाथ पकड़कर मुझे बाहर निकाल देंगे? मैं और कहीं नहीं रहूँगी। इधर आपके साथ ही रहूँगी।" जब हँसते हुए उसने ऐसा कहा तो मुझे संदेह हुआ कि कहीं यह महिला पगली तो नहीं है? मैंने कहा—

'कनकम' जिस घर में मुझ जैसा अकेला युवक हो, वहाँ आप का रहना उचित नहीं। दुनिया में किस पर कौन-सा अपवाद लगाया जायगा यह कौन जाने?"

उसने पूछा—"क्यों इस प्रकार चिकनी चुपड़ी बातें करते हैं? आप को देखने की इच्छा से ही मैं इधर आपको खोजती हुई आयी हूँ यह आपको पसंद नहीं है न?"

कनकम ने क्रुद्ध मुद्रा से देखा। ऐसा लगा कि क्रोध उसके सौंदर्य में चारचाँद लगा रहा है।

उसने कहा—"कथा में प्रेम और स्नेह को ढूँढ़नेवाला लेखक, वास्तविक जीवन में इतना कठोर होगा ऐसी मुझे आशा नहीं थी।

मैं वेदना, विस्मय, हँसी और भय आदि भावनाओं में उलझकर तड़पता रहा।

मैंने कहा—"आप युवती हैं.....ऐसा मालूम पड़ता है कि अच्छी तरह पढ़ी-लिखी भी होंगी। मेरे कहने का अर्थ जाने बिना आप जल्दबाजी करती हैं।"

उसने कहा—मुझे "आप" कहने की क्या ज़रूरत है? 'तुम' ही कहकर पुकारिए। मैं दादी या बूढ़ी तो नहीं। उम्र में आपसे दो या तीन साल छोटी ही हूँगी।

यह कहते समय उसके गालों का रंग सिंदूरी हो गया।

बाहर पानी बरस रहा था। उस अंधेरे में उससे कहाँ जाकर रहने के लिए कहूँ, यह मेरी भी समझ में नहीं आया। थोड़ी देर मैं मौन बैठा रहा। पानी बरस रहा था।

मेरे सामने उसके रखे हुए फल वैसे ही पड़े थे। सामने की कुर्सी पर कनकम नाम का यौवन-काव्य बैठा था।

मैंने पूछा—"तुम अैसी अकेली आयी हो। तुम्हारे पिता और माँ इसका विरोध नहीं करेंगे? क्या किसी पत्रिका में मेरी कहानियों को पढ़कर मुझे देखने के लिए ही आयी हो? क्या सामने आकर प्रशंसा करना ज़रूरी है? तुम्हारा पत्र पढ़ते समय हर बार अच्छी कथाएँ लिखने का बल मुझे मिलता है। मैं समझ रहा था कि तुम्हारे प्रशंसा-पत्र ही सुन्दर हैं। अब देखने पर उन पत्रों का जन्मस्थान मेरे सामने मनुष्य रूप में बैठा है जो स्वयं सुन्दर है।"

उसने कहा—"अब आप एक कथाकार की तरह बोल रहे हैं। मेरे घरवालों ने पूर्ण सम्मति से ही मुझे यहाँ भेजा है। मेरे माँ-बाप प्रगतिशील विचारधारा के हैं। आपको देखने की बात कहकर ही आयी हूँ। मेरे निश्चय में एक परिवर्तन हुआ। आप मदुरै में रहेंगे, आप से मिलकर वैसे ही दूसरी गाड़ी पर

कोडैकानल लौटूँ ऐसा समझकर मैं आयी। आपसे मिलने के लिए रामेश्वरम तक आना है ऐसा मैंने नहीं सोचा।"

मैंने कहा—"तुम तो साहसी हो। इस उम्र में तुम पागलपन की हद तक कथा प्रेमी हो, यह आश्चर्य की बात है।"

उसने कहा—"पाठकों को ही लेखक की प्रशंसा करनी है। स्वयं आदर पाने के लिए लेखक को पाठकों की प्रशंसा नहीं करनी है। आप मेरी प्रशंसा मत कीजिए।"

मैंने हँसकर पूछा—"कनकम! तुम अच्छी तरह बोलना भी जानती हो। मेरी कथाओं में कौन-सी कथा तुमको पसंद है? कहो, अपनी आलोचना की इसे एक परीक्षा समझूँ। कनकम ने मेरी ओर देखा मानों मेरी आँखों से कुछ ढूँढ़ निकाला है इस प्रकार वह हँसी।

मैंने कल्पना की कि ईश्वर ने स्वच्छ जल में तैरनेवाली दो मछलियों को पकड़कर इसके नेत्रों का निर्माण किया है और अलग-अलग बत्तीस सीपों के मोतियों की माला मुँह में दाँतों के रूप में रख दी है।

उसने कहा—मैं पूछती हूँ, अगर आप इन फलों को स्वयं नहीं खा सकें, तो मैं छीलकर दे दूँ?"

उसने एक मुसंबि को लेकर छीलना शुरु किया।

मैंने कहा—"देखो कनकम। इस प्रकार के कार्य मुझे बिलकुल पसंद नहीं।"

उसने पूछा—"कौन-सा कार्य? शबरी ने राम का सत्कार नहीं किया?"

मैंने कहा—"शबाश। उदाहरण भी देती हो। शबरी के जैसे तुम भी बूढ़ी हो क्या?"

इसे सुनकर उसने सिर झुका लिया। चंपक की कलियों की तरह उसकी उँगलियों ने छिले हुए फलों को लेकर मेरे सामने रखा।

'खाइए।"

"तुम?"

"मैं भी ले लूंगी।"

मेरी प्रार्थना से विवश होकर उसने एक छोटा टुकड़ा ले लिया। हाथ में रखकर ही वह बोल रही थी।

"आपकी कथाओं में मुझे बहुत पसंद है—"मिलन।" उस कथा को आपने कोड़ैकानल के वातावरण में ही लिखा है। मैं कोड़ैकानल में ही पैदा हुई वहीं की रहनेवाली हूँ, उसे पढ़कर मेरे मन में दृढ़ विश्वास हो गया।

संवाद के बीच मुझे और एक बात याद आयी। मैंने कहा—"कनकम। थोड़ी देर बैठो, दूध रखा है। रोज़ के जैसे उसे उबालने का समय भी हो गया, मैं भूल ही गया। अभी "स्टौव" को जलाकर गरमकर लेता हूं। दोनों पिएँगे"

उसने कहा—"आप चुप बैठिए। मैं उसे गरम कर लाती हूँ—स्टौव और दूध कहाँ है!

यह कहते हुए वह कुर्सी से उठी। मुझे एक ओर आश्चर्य दूसरी ओर भय था। मैंने सोचा कि इतनी स्वतंत्रता के साथ यह कैसे व्यवहार करती है? इसमें ज़रा भी संकोच नहीं है। ऐसा सोचकर मैं असमंजस में पड़ गया। उसको कौन-सा उत्तर दूँ? यह भी समझ में नहीं आ रहा था।

मैंने कहा—"तुम यह सब मत करो। देखो, इस अलमारी में पुस्तकें हैं, पत्रिकाएँ हैं। चाहो तो लेकर पढ़ो। एक मिनट में मैं दूध गरम करके लाता हूँ।"

उसने कहा—"नहीं। नहीं। मैं ही उसे गरम करके दूंगी।"

मैं उसकी सेवा को इनकार न कर सका। कुर्सी पर बैठकर छिले हुए फल को खाने लगा।

इसका कनकम नाम कितना सार्थक है? "कनकम" का अर्थ है "स्वर्ण"। इसका सारा शरीर स्वर्णिम है, इसका गुण भी स्वर्ण के समान है।"

* * *

वेदपाठ करनेवाले सुन्दरमूर्ति ने वहाँ आकर पूछा—"जी, आप अंदर हैं? सो गये या जागते हैं? इसे देखने के लिए आया हूँ।"

उनकी आवाज़ सुनकर मैं चौंक गया। मैं झट से उठकर द्वार पर गया।

वेदपाठी हमारे परिवार का मित्र है। पहले जब वे मदुरै के मीनाक्षी-मंदिर में वेदपाठ करते रहते थे तब उनकी और हमारे परिवार को घनिष्ठ मैत्री थी। उनकी सहायता से ही रामेश्वरम में मुझे इतना सुविधाजनक घर मिला।

मैंने सोचा कि सामने के अलिंद में उनको बिठाकर थोड़ी देर बातें कर लौटा दूँ।

"अंदर चलिए। बरामदे से ही मत लौटाइए। मुझे आपसे कुछ पुस्तकें और पत्रिकाएँ चाहिए। घर ले जाकर पढ़ूँगा।" ऐसा कहते हुए मुझसे पहले वेदपाठी कमरे में घुसे। मुझे आश्चर्य हो गया।

वेदपाठी के साथ मैं भी अंदर गया। मुझे बहुत डर था कि "अगर वेदपाठी मेरे साथ इस समय कनकम को देखेंगे तो क्या सोचेंगे?" मेरा मन काँप उठा, पसीना आने लगा।

अच्छा हुआ कि कनकम अंदर के कमरे में ही दूध उबाल रही थी। इस विश्वास पर मैंने अपने मन को दृढ़कर लिया।

"आइए। आपको जितनी पुस्तकें चाहिए उतनी ले जाइए।" इतना कहते हुए उनको अल्मारी के पास ले गया।

वेदपाठी ने पूछा—"अंदर क्या करोसिन की बू आ रही है?

मैंने कहा—"नहीं, स्टौ पर दूध गरम हो रहा है।

पुस्तक लेकर वे लौट गये। एक कोने पर कनकम की खुली पेटी थी। उस पर उनकी दृष्टि पड़ी। वायिल एवं

वेल्वेट चोलियाँ, साड़ियाँ आदि उस पेटी में करीने से रखी गयी थीं।

पेटी को देखकर वेदपाठ करनेवाले ने पूछा कि जो....और कोई इधर है क्या? इनको क्या उत्तर देना है यह सोच ही रहा था कि उसी समय ग्लास में दूध के साथ कनकम भी आ गयी। वेदपाठी ने हम दोनों को देखा। उनकी आँखों में बदमाशी दीख पड़ी।

दूसरे व्यक्ति को देखकर भय से कनकम भी स्तंभित हो गयी। वेदपाठी अपने आप हँस दिये। उनकी हँसी से यह मालूम पड़ा कि उन्होंने हमको ग़लत समझा है।

मैंने शुरू किया—"वेदपाठी...जी। ...यह महिला.... मुझे देखने के लिए....।" झेंपकर रह गया।

वेदपाठी ने कहा...."ओहो। मेरे आने का समय ठीक नहीं....बाद में आऊँगा। अब समझ में आया कि आप के पिता जीने आपको किसलिए रामेश्वरम भेजा है। अब तक सोचता था कि आप कितने अच्छे हैं?"

इतना कहकर वेदपाठी झट से सीढ़ियाँ उतरकर चले गये।

मुझे ऐसा लगा कि मेरे सिर पर अग्नि की वर्षा हो रही हैं। कल ही वे मेरे बारे में कुछ ऊटपटाँग बातें लिखकर मेरे पिताजी को पत्र भेजेंगे। मेरे मन में उसकी कल्पनाएँ उठीं।

"लीजिए। दूध पीजिए।"

मेरा सारा क्रोध उस महिला पर उतरा।

मैंने कहा—"यही एक बाकी था। उबालकर लायी हो न? मेरे सिर पर उड़ेल दो।"

वह महिला मेरे क्रोध को देखकर डर गयी। धीरे से आकर मेरे पास खड़ी हुई।

शान्त भावना से उसने पूछा—"आप मुझसे नाराज़ हैं? उन जैसे व्यक्तियों को कोई भी चीज़ अच्छी नहीं दीखती होगी। कनकम ने लाड़ प्यार की भावना से धीमी आवाज़ में कहा—"दुनिया एक युवती और युवक को रात में एक घर में एकान्त में देखने पर उनके अनुचित संबंध का अनुमान करती है। ज़ब हम दोषी नहीं तो क्यों उसकी चिन्ता करें?"

मैंने थोड़ी ऊँची आवाज़ में कहा—"तुम्हारा समाधान मुझे नहीं चाहिए। यदि अब तुम मेरी बात नहीं मानोगी तो मैं गर्दन पकड़कर तुम्हें बाहर निकालने से नहीं डरूँगा। पेटी को लेकर जल्दी बाहर जाओ। लो, ये फल बाकी हैं। इन्हें भी ले लो। किसी धर्मशाला में रहकर सुबह अपने गाँव चली जाओ।" उसकी मुख-मुद्रा बदल गयी। करुण दृष्टि से उसने मुझे देखा। दूध को मेज़ पर रखा। मौन होकर वह पेटी के पास गयी। न जाने मेरी आवाज़ में इतनी कठोरता कहाँ से आयी। मैं चिल्ला पड़ा।

उस युवती ने पेटी को बंद किया। पेटी को हाथ में ले लिया। एक ही क्षण मेरी ओर देखा। वह बाहर चली

गयी। बाहर बहुत अँधेरा था, बारिश बहुत हो रही थी। समुद्र का जल गाँव के अंदर आने के जैसे लहरों की आवाज़ पास में बहुत ज़ोर से सुनायी पड़ी। मैं दरवाज़े को बंद करके अंदर जाकर लेट गया और सो गया।

दूसरे दिन सुबह पाँच या साढ़े पाँच बजे किवाड़ खटखटाने की आवाज़ सुनायी पड़ी। मैंने दूधवाले की प्रतीक्षा में दरवाज़ा खोला। वहाँ एक वृद्ध अपरिचित व्यक्ति हाथ में थैली लेकर खड़े थे। उसने पूछा—"जी। आप ही लेखक हैं....." "मैंने सिर हिलाया। फिर उस व्यक्ति ने कहा—मैं कोडैकानल से आया हूँ। मेरी एक लड़की पागल है। उसका नाम "कनकम" है। कहानी और कहानी लेखकों को बहुत पसंद करती है, उसका पागलपन कहानी लेखक का पागलपन है। दो दिन के पहले घर पर किसी से कहे बिना निकल गयी। मदुरै गयी होगी ऐसा सोचकर आपके घर जाकर पूछा। आप इधर ही रहते हैं ऐसा जान लिया। आपके घर पर कनकम को रामेश्वरम का पता मिल गया है। वह इधर आयी है क्या?" उनकी आवाज़ में बहुत कंपन था। "जो घटित हुआ उसे ज्यों का त्यों. बताना चाहता था। लेकिन तब मेरे मुख से झूठ ही निकला—"ऐसी कोई भी महिला मेरी खोज में यहाँ नहीं....।"

"पागल लड़की। इस प्रकार कभी-कभी घर को छोड़कर भागती है। सबेरे आपको मैंने कष्ट दिया, क्षमा कीजिए।" ऐसा कहकर वह आदमी चला गया। इसपर विश्वास नहीं कर

सका। मुझे ऐसा लगा कि वह व्यक्ति जान-बूझकर बोलता है कि वह महिला पगली है।

दो दिन के बाद एक दिन मैं मोतीसराय रास्ते में एक दोस्त की दूकान पर बैठकर दैनिक पत्रिका पढ़ रहा था। एक खबर पढ़ते समय मुझे ऐसा लगा कि मेरे हृदय पर लाखों काँटे चुभ गये। इन्दो सिलोन एक्सप्रेस पाम्पन पुल पर जाते समय एक युवती रेल की खिड़की खोलकर समुद्र में कूद गयी। उसी दिन समुद्र में ज्वार अधिक होने के कारण उसकी रक्षा नहीं हो सकी। जब पुलिसवालों ने उसकी पेटी को खोला तब उन्हें मालूम हुआ कि यह कोडैकानल की कनकम है।

जब इतना पढ़कर मैंने समाप्त किया मुझे ऐसा लगा कि उस मोती सराय में जितनी दूकानें हैं उन सबमें रहनेवाले मोती के दाँत बनकर मुझे देखकर अट्टहास कर रहे हैं।

"कनकम। तुम्हारे पिताजी तुमको पागल कहकर झूठ बोले थे। तुम पगली हो क्या? अपनी सारी कृतज्ञता को समेटकर इस बेचारे कथाकार को अर्पण करने के लिए तुम दौड़कर आयी हो। तुम्हारी कृतज्ञता को ग्रहण करने की क्षमता मुझमें नहीं थी। हाँ, हाँ नहीं थी। कृतज्ञता के साथ मैंने तुमको भी ठुकरा दिया। मैं पापी हूँ। मैं बड़ा पापी हूँ।"

बारह साल के बाद ही यह लिखने का साहस मुझे हुआ है। तुम हँसोगी कि "लिखकर आप अपने मन को शान्त कर सकते हैं क्या?"

लेकिन, वह घाव इतनी जल्दी भर जायगा क्या?

14. विचित्र महिला

मैं चिंतन में डूबा हुआ था। मैं क्या कर रहा हूँ इसका मुझे ध्यान ही नहीं रहा। पत्ते में जो कुछ परोसा गया था खा रहा था। मेरे मानस पटल पर सुगुणा से याद दिलायी हुई पुरानी छोटी कहानियाँ, उनमें वर्णित वातावरण और उनकी घटनाएँ एक चल चित्र की भाँति आ रहे थे। जो चीज़ चाहिए उसे पत्ते से ले लेता और जो नहीं चाहिए उसे छोड़ता हुआ उपेक्षा के साथ मेरा हाथ पेट भरने का काम कर रहा था। सुगुणा भी मेरे सामने बैठकर खा रही थी। खाते समय वह भी कुछ नहीं बोली। मेरी पत्नी मौन रूप से दोनों को खाना दे रही थी।

जब मन भोजन से अधिक रोचक विषयों को याद करता है, तब भोजन चाहे कितना भी स्वादिष्ट क्यों न हो उसके षट् रस की याद नहीं रहती, उसको एक सहज किया की भांति "इसे भी खाना है" खाते हैं। कई संदर्भों में मुझे यही अनुभव हुआ। दुःखी अवस्था में या सुखी अवस्था में रहते समय भी कई संदर्भों में इस प्रकार का अनुभव मुझे कई बार हुआ कि खाना खाने के बाद भी याद नहीं आया कि मैंने खाना खाया है।

अंत में मुझे खाकर हाथ धोने की याद मेरी पत्नी और सुगुणा ने दिलायी।

पत्नी ने कहा—"अक्सर खाते समय ये ऐसा ही करते हैं। न जाने क्या सोचते हैं। खाते समय जीवन के बारे में भूल

जाते हैं। न जाने यह किन कथाओं और कल्पनाओं में डूबे रहते हैं।"

खाने के कमरे से हाथ धोकर मैं बरामदे में आने के बाद, मेरी पत्नी इस प्रकार मेरे बारे में सुगुणा से कह रही थी। अंदर से सुगुणा के लौट आने में बहुत देरी हुई। मैंने अनुमान लगाया कि वह मेरी पत्नी को खाना खिला रही होगी। साथ-साथ दोनों के आपस में बातचीत करने की आवाज़ भी सुनायी पड़ी। उन बातों को सुनने की इच्छा मुझे थोड़ी भी नहीं थी।

घर के सामने के कमरे में मैं और किसी चिन्ता में पड़ गया। उसने कहा था कि "पथिक" नामक मेरी छोटी कहानी को पढ़कर कमरा बंद करके वह अकेली सिसक-सिसककर रोयी थी। वह क्यों? मेरी समझ में नहीं आया। वह कहानी एक सिंदूर लगाकर सुमंगली के वेष में अपने को आइने में देखने की बाल-विधवा की इच्छा के बारे में थी। उसे पढ़कर अगर कोई रोयें तो समझना चाहिए कि अवश्य यह भी उसी दुख से दुखी है। अठारह वर्ष की आयु से तीस बत्तीस वर्ष की आयुवाली युवा विधवा भी वह कहानी पढ़ें तो रोये बिना रह नहीं सकती। लिखते समय उस कहानी के बारे में मैंने इस प्रकार सोचा भी था। "उस कहानी को पढ़कर यह रो गयी" ऐसा कहती हैं, इसका क्या अर्थ"। सुगुणा नामक यह युवती भी उसी प्रकार खिलते ही मुरझाई हुई है क्या? मन की इच्छायें एक भी पूर्ण नहीं हुई हों। ऐसी परिस्थिति में रहनेवाली है क्या? यह कहती है कि पाम्बन पुल से समुद्र में कूदकर

आत्महत्या करने की इच्छा भी एक बार उसके मन में आयी थी। यह आश्चर्य की बात है कि इस युवावस्था में ही इसको जीवन में इतना कटु अनुभव मिला है। जीवन में विभिन्न प्रकार के अनुभवों को पानेवालों का मैं आदर करता हूँ। ऐसा मैं सोचता हूँ कि "अनुभवी लोग सफलता से जीवन बिताते हैं। उनका वह अनुभव ही दौलत हैं"। सुगुणा को इस प्रकार के अनुभव युवावस्था में ही मिले थे। फिर भी उसके जीवन में आश्चर्य भरा हुआ है। उसकी प्रशंसा करनी चाहिए। मुझे ऐसा लगा कि बीस बरस की आयु में ही निजी जीवन को जीवित रखने और मरने के लिये रह-रहकर आयी हुई इच्छाओंवाली युवती के अनुभव में बहुत दुख होना चाहिए। इन सभी के लिए सिर्फ़ एक ही कारण बता सकते हैं।

बहुत काल से ही इस देश की लड़कियों को एक ही प्रकार से सोचने का अभ्यास हो गया है। गाड़ी खींचने के लिए अभ्यस्त घोड़े की आँखों को दोनों ओर से हमेशा छिपाये रखते हैं। इसी प्रकार नवीन ढंग से स्वतंत्र रूप में चिंतन करने की स्वतंत्रता लड़कियों को नहीं दी गयी। पुराने ज़माने में इस देश की लड़कियों को तर्क-वितर्कों के बारे में सोचने की भी अनुमति नहीं थी। इस सदी ने हमारे बीच में एक प्रकार की विनोद-परिस्थिति का सृजन किया। पुरानी के और नयी पीढ़ियों के मिलने की सदी में दोनों पीढ़ियों की चिंतन-धाराएँ टकराती हैं। प्रगतिवादी और साफ़ मनवाली पवित्र लड़कियों के लिए यह एक परीक्षा-काल है। उनके अच्छे विचार भी गलत ढंग से समझे

जाते हैं। कभी-कभी उनको ही गलत समझ लेते हैं। तितली नामक उपन्यास में इसे दिखाने का मैंने प्रयत्न किया। पुराने और नये विचारों का टकराव ही लघु उपन्यास के रूप में उसमें चित्रित है।

इतने में मेरी पत्नी को खाना खिलाकर सुगुणा भी सामने के कमरे में आ गयी। उसकी निडरता और जाने की अनिच्छा देखकर मुझे ऐसा लगा कि वह उस दिन रात को हमारे घर में ही रहने का इरादा करके आयी थी। मुझे भी उससे बहुत से विषय जानने थे। वह बहुत विचित्र लड़की-सी मुझे दीख पड़ी।

पढ़े-लिखे लड़कों में भी आजकल जब कि नये विचार और तीव्र भावनाओं को देखना बहुत मुश्किल है, तब एक लड़की उन्हीं विचारों को लेकर मेरे पास थी यह कम आश्चर्य की बात नहीं। मैंने सोचा कि इस देश में पूर्ण संवेदना दिखाने के लिए इस प्रकार की लड़कियाँ ही लायक हैं। मुझ जैसे लेखकों के इस प्रकार के लेखन के द्वारा ही चेतना पाकर लड़कियाँ सामाजिक सेवा की ओर नये विचार रखकर कदम बढ़ाती हैं। इन लोगों के नये विश्वासों को मुझ जैसे लोग स्वीकार नहीं करेंगे तो क्या फ़ायदा है? इस प्रकार सोचते समय सुगुणा के प्रति संवेदना अधिक हो गयी।

सुगुणा से मेरी चर्चा आगे बढ़ी—"सुगुणा नामक कथा में आनेवाली अध्यापिका में जो कमियाँ हैं वे आपमें भी हैं—ऐसा मैं सोचता हूँ। यह प्रश्न मैं आपसे मज़ाक़ में पूछता हूँ। इसके लिए मुझे क्षमा कीजिए। इससे भी अधिक स्पष्ट रूप से आपसे

संदेहों को पूछना अनागरिकता होगी—मुझे ऐसा लगा। मेरे संदेहों की आप स्वयं निवृत्ति करें तो हम दोनों को आगे बोलने के लिए बहुत सुविधा होगी।"

"उस कथा की अध्यापिका और मुझमें सभी प्रकार से मेल है। मैं अब इस अध्यापिका की स्थिति में ही हूँ। उसकी जैसी इच्छा के कारण ही मैं बहुत दुःख में पड़ गयी।" उसके उत्तर से मैंने समझा कि वह बहुत बुद्धिशालिनी है। मेरे प्रश्न का उसने ठीक ही उत्तर दिया।

अभी मुझे मालूम हुआ कि सुगुणा एक बालविधवा है। तितली की काल्पनिक नायिका सुगुणा की अच्छी जगह शादी होने की इच्छा से ही मैंने वर ढूँढ़ने के लिए पाठकों को विज्ञापन दिया था। लेकिन वास्तविक नायिका सबसे विमुख होकर नये विचारों को लिए सामने खड़ी थी।

"उसे छोड़ दीजिये। 'मोती सराय' कहानी की कनकम के समान पाम्बन-पुल में चलती रेल से समुद्र में कूदकर आत्म-हत्या करने की आपकी इच्छा का आधार क्या है? 'मोती सराय' कहानी में और आपके जीवन में मेल है क्या? उस पूरी कहानी ने या उसके आत्महत्या करनेवाले प्रसंग ने आपके जीवन को प्रभावित किया?"

इस प्रश्न का उसने तुरन्त उत्तर नहीं दिया। मैंने नहीं छोड़ा—

भले ही मेरे मन को दुख हो फिर भी मैं आपको अधिकार देता हूँ कि निस्संकोच आप चुप न हों, कुछ कहें।

वैसे तो संकोच के लिए कुछ भी नहीं और न आपके मन को दुख पहुँचानेवाली कोई बात है। लेकिन मुझे इस बात का डर लगता है कि जिस विषय के बारे में आप पूछते हैं उसी विषय की दुबारा याद आने पर मेरे मन में भी वेदना होगी। आत्महत्या करने की इच्छा आने के पहले भावनाओं के द्वारा मैं कई बार जीवित रहकर खुद मर चुकी हूँ। अपनी इच्छाओं और भावनाओं को जान-बूझकर हम ही हत्या करें तो उसे आत्महत्या ही कहना है। वैसा कहना अगर गलत नहीं तो पहले भी मैं कई बार मर चुकी हूँ।"

"वह तो ठीक है।"

15. नयी इच्छाएँ और तिरस्कार

मेरी चिन्ता व्यर्थ नहीं हुई कि मेरे दूसरे प्रश्न के उत्तर में सुगुणा ने बहुत मुख्य बातें कहीं। अपने मन पसंद एक आदमी के साथ रहकर नया जीवन बिताने का वह प्रयत्न कर रही थी। उस प्रयत्न में असफल हो जाने के बाद ही उसको आत्महत्या करने की इच्छा हुई। इन बातों को उसकी बातचीत से ही समझ सकते हैं।

"मैंने आपसे कहा था न कि सामाजिक सेवा और गाँवों को आगे बढ़ाने के लिए ग्राम-सेविका का काम करने के पहले एक प्राइवेट हाई स्कूल में मैंने काम किया। उसी समय की यह घटना थी। गरीब लड़कों के ट्यूषन से पैसा कमानेवाले बूढ़े अध्यापकों से भरे उस स्कूल में जब मैं अध्यापिका बनकर आयी

तो उसी साल लक्ष्यवादी और तीव्र भावनाओं से युक्त एक युवा अध्यापक भी आये थे। उनके गांभीर्य युक्त सुन्दर मुख को देखकर ऐसा कोई न होगा जो उनसे बोले बिना रह सके। उनका नाम मुरुगन था। वे मुरुगन के समान बहुत सुन्दर थे। पाठशाला में कहते सुना कि वे तिरुनेलवेली के आसपास के रहनेवाले हैं। हम दोनों के बातचीतों के क्षण आज भी मुझे याद हैं। एक दिन पाठशाला के पुस्तकालय में बातचीत के साथ हम दोनों का मिलन हुआ। और दोनों एक दूसरे में बड़ा विश्वास रखकर बिदा हुए।

पाठशाला के पुस्तकालय को एक ही पुस्तक एक ही समय दो लोग लेना चाहें तो झगड़ा नहीं होगा तो क्या होगा? जब मैं पुस्तकालय के अध्यक्ष से "गार्की की माँ" नामक पुस्तक अपने लिए पूछ रही थी, तभी वे अन्दर आये मेज़ पर रखी हुई चाबी से अलमारी खोल, उस पुस्तक को लेकर चले गये। मुझे लगा कि किसी ने मेरे मुख पर थप्पड़ मारा। अगले दिन उनको पाठशाला में आते ही मैं उनसे झगड़ा करने गयी। उन्होंने मुझसे बहुत विनय से बातें की।

"अभी मालूम हो गया कि इस उपन्यास को पढ़ने के लिये मुझसे स्पर्धा रखनेवाला इस स्कूल में और एक है। मनुष्य को स्वप्नावस्था से जगाकर वास्तविक दुनिया में लानेवाली पहली पुस्तक है यह। जीवन की धड़कन को दिखानेवाली इस पुस्तक को मैं सातवीं बार पढ़ रहा हूँ। अगर आप पढ़ना चाहती हैं तो अभी मुझसे ले जा सकती है। मैं फिर पढ़ लूँगा—ऐसा कहकर

उस पुस्तक को मुरुगन ने हँसकर मुझे दे दिया। पुस्तक पढ़ने के पहले उनके बारे में मैंने पढ़ लिया। उसी क्षण में वे एक लक्ष्य वीर बनकर मेरे मन मंदिर में बस गये। इस घटना के बाद मैं मुरुगन से खूब मिलने-जुलने लगी। बहुत बातचीतें भी की। जब दोनों का वर्ग नहीं होता, तो आराम के समय पाठशाला के पुस्तकालय में जाकर संसार के साहित्य के बारे में बातचीत करते रहते। कभी-कभी दूसरे पीरियड की घंटी का ख्याल किये बिना बातें करते रहते। हमारा स्नेह, साहित्य के बिना ही स्नेह के रूप में बढ़ता जा रहा था। कुछ दिनों में मुरुगन मेरा बड़ा विश्वास पात्र बन गया। मुरुगन इस प्रकार मुझसे मिलने-जुलने लगा तो मेरे जीवन की हीन भावना दूर होने लगी और मुझमें आत्मविश्वास भर गया। विश्वास की यह कली उसके स्नेह रूपी मलय पवन से विकसित होकर खिल उठी। इस संसार में एक मात्र मेरी माँ ही ऐसी थी जिसने मुरुगन से इस प्रकार बातचीत करना और मिलना जुलना पसंद नहीं किया।

"तुम पर मुझे भरोसा है बेटी! मैं चालीस हज़ार मंदिरों की भी कसम खाकर कह सकती हूँ कि तुम किसी भी प्रकार बुरी नहीं बनोगी। लेकिन इस दुनिया की आँखों में अनेक पीढ़ियों से संदेह और अविश्वास बस गया है। मुरुगन जैसे एक युवक के साथ हँसकर बोलना और रास्ते में एक साथ आना यह सब दुनिया के लोगों में संदेह उत्पन्न करनेवाले कार्य हैं। मैं जब तक जिन्दा रहूँ तब तक अभिमान के साथ रहने के लिए मार्ग दो, बेटी!" इस प्रकार मेरी माँ ने बहुत नम्र होकर और डरते-डरते

कहा। मैं जानती थी कि जब से मुरुगन के प्रति मेरा विश्वास बढ़ा, तब से मेरी माँ का विश्वास मुझ से हटने लगा। दूसरे लोगों के मन में मेरे बारे में संदेह और अविश्वास पैदा होने के पहले ही अपनी माँ के मन में यह उत्पन्न हो गया। मुरुगन ने मुझे कई बातों के बारे में कसम खिलायी थी।

"कुछ दिन शान्त रहो सुगुणा! साहस के साथ कितने ही अच्छे कार्य करने की मेरी इच्छा है। यह समाज सोचता है कि धनिक लोग ही इस प्रकार फैशन से रह सकते हैं। एक सौ बीस रुपये पानेवाला अध्यापक कैसे उनकी नकल कर सकता है? समाज चाहता है कि सभी अध्यापक कोल्हू के बैल के समान बने रहें।

लेकिन मैं वैसा बैल नहीं बनूँगा। मेरी इच्छा है कि कोई न कोई नई भावना समाज में उत्पन्न करूँ।" इस प्रकार कई बार मुरुगन ने मुझ से कहा। उनकी इन्हीं बातों ने मुझे अधिक उत्साहित किया।

कहने से क्या प्रयोजन है? सब कुछ व्यर्थ हो गया। उसी वर्ष के अंत में उन्हें पाठशाला से निकाल दिया। दो तीन सभाओं में दिये गये उनके भाषणों को सुनकर प्रधानाध्यापक ने पाठशाला के संचालकों को उनके बारे में रिपोर्ट दी। संचालकों ने मुरुगन को एक राजनीतिज्ञ होने के संदेह में बाहर कर दिया।

"सुगुणा! लोग मानते हैं कि प्रगतिवादी या तीव्रवादी बनना कानून के खिलाफ़ है। प्रगति करने का आग्रह रखनेवाले की यही गति है। हो सके तो ग्रीष्मावकाश की छुट्टियाँ खतम होने के पहले ही मेरे गाँव आ जाओ। अब मुझे बिदाई दो।" उनके ऐसा कहते ही मेरी आँखों में आँसू भर आये। उसके बाद उनकी चिट्ठियों से जान सकी कि उनको एक साल तक कहीं भी नौकरी नहीं मिली और वे तिरुनेलवेली में यों ही घूमते रहे। उसके बाद उनसे पत्र भी नहीं आये। उनकी खोज में तिरुनेलवेली तक जाने की मेरी माँ ने मुझे अनुमति नहीं दी।

किसी न किसी प्रकार दो तीन साल बीत गये। मुरुगन के बारे में मुझे कुछ भी मालूम नहीं हुआ। अंत में मुझसे किसी ने कहा कि वे रामेश्वरम के बोर्ड हाई स्कूल में काम कर रहे हैं। मुझे विश्वास नहीं हुआ। फिर भी मेरे आग्रह ने एक प्रकार का विश्वास पैदा करा दिया। एक शनिवार की दोपहर को माँ से झूठ कहकर कि पाठशाला की लड़कियों को उल्लास यात्रा के लिये ले जाना है मैं रामेश्वरम गयी। वहाँ मुरुगन थे। लेकिन मैं जैसा सोचती थी वैसे नहीं थे। उनकी शादी हो चुकी थी और एक बच्चा भी था। परिवार के साथ ही रामेश्वरम में बस गये थे। उनके मुख पर भी पुरानी लचक नहीं थी। चिन्ता और कर्तव्य के भार से उन के मुख पर पहले जैसा उत्साह दिखायी नहीं दिया। उन्होंने मेरा स्वागत बहुत सीधे ढंग से ही किया।

उनके बोलने से मुझे ऐसा लगा कि "आगे से मैं इन्हें तलाश करती हुई क्यों आऊँ?" सत्य बोलने से धनवान लोगों को लाभ है और गरीबों को हानि। मुझे याद आया कि एक भाषण में उन्होंने ऐसा कहा था। मैं जैसा सोच रही थी कि मुरुगन मेरे जीवन में प्रकाश लाये थे। मगर मेरी आशाओं पर पानी फिर गया। मार्क्स के बारे में बोलेनेवाले पुराने मुरुगन मर चुके थे। हाँ, वे अपने पारिवारिक जीवन और कर्तव्य के बारे में ही बोले। रामेश्वरम से धनुष्कोटी तक लौटते समय लगभग मेरी सभी आशायें मर गयी थीं। रेल के पांपन पुल से तड़-तड़ शब्द कर दौड़ती रेल से दरवाजा खोलकर मुझे समुद्र में कूदने की इच्छा हुई। जीने की इच्छा न होने के बाद मरने की इच्छा आयेगी ही? आपकी "मोती सराय" पुस्तक भी पढ़ ली। मेरे इस विचार को आपकी कहानी ने बड़े रोचक ढंग से व्यक्त किया है। वह कहानी पढ़ी नहीं होती तो रेल गाड़ी से कूद कर मरने की इच्छा आती ही क्यों? धनुष्कोटी में ही लहराते समुद्र में कूद गयी होती। लेकिन रेल में साथ बैठे हुए लोगों के जाग जाने के कारण उसी दिन पाम्पन में अपनी आत्महत्या करने का विचार व्यर्थ हो गया।

16. पक्की दुरुस्ती

सुगुणा के जीवन में घटित अनुभवों को सुनकर मुझे ऐसा लगा कि अपने छोटे-से उपन्यास में दिया गया तितली नाम कितना उचित रहा। वह समाज सेवा करने के लिए तैयार होकर अपने को बरबाद करती रही, जिस प्रकार रेशम के कीड़े (तितली) को मारकर धागा लेकर रेशमी कपड़े बनाते हैं, उसी प्रकार इस समाज में सुगुणा जैसे और कितने ही लोगों की बलि हो जायगी। इसे सोचकर मुझे बड़ा दुःख हुआ। उसी दिन रात भर मैं शांत होकर उसकी बातें सुनता रहा और वह भी अपनी कहानी बिना कुछ छिपाये कहती रही। साढ़े बारह या एक बजे तक वह अपनी कहानी कहती रही थी। मैंने अपनी पत्नी को बुलाकर कहा कि वह और सुगुणा नीचे के कमरे में सो जाँय और मैं स्वयं ऊपरी मंजिल पर जाकर सोऊँगा। मेरी खोज में आयी हुई इस तितली को मैंने अपनी जीवन संगिनी तितली के हाथों सौंप दिया। मेरी चिन्ता का आदर करती हुई वह रात भी मौन थी। बिस्तर पर लेटने पर भी थोड़ी देर के लिए मुझे नींद नहीं आयी। सुगुणा द्वारा कहे गये जीवन के अनुभव, अल्लीयूरणी गाँव में ग्राम सेविका के रूप में आने से सहे गये कष्टों आदि सभी बातें एक-एक करके मेरे मन में आने लगीं। यह सब सोचकर मुझे बड़ा दुःख होने लगा। इस देश की लड़कियाँ उन तितलियों के समान हैं जो अपने विभिन्न सुन्दर रंगों से दूसरों को आकर्षित करके मोहित कर देती हैं।

यह नहीं कह सकते हैं कि उड़ते समय कौन किस ओर से उन्हें पकड़कर डिब्बे में बन्द कर देगा। सुन्दर और आकर्षक वस्तुओं का नाश करने के लिए अनेक लोग हैं। ऐसा लगता है कि जब तक धन, कामुकता और उद्दंडता से लोग भेंट करते रहेंगे तब तक कुरूप लड़कियों को ही ऐसा काम देना पड़ेगा। उन लोगों पर मुझे गुस्सा आ गया, जो सुन्दर लड़कियों को पल भर भी निश्चिन्त होकर जीने नहीं देते। "जब एक सुन्दर लड़की सजधज कर रात में अकेली रास्ते से निर्भीक होकर जा सकेगी तभी इस देश को पूर्ण स्वतंत्रता मिली है, ऐसा मान सकेंगे।" इस प्रकार किसी का कहा एक उद्धरण मेरी स्मृति में आ गया। और भी कई बातों को सोचते-सोचते कुछ क्षणों में मैं सो गया।

दूसरे दिन जब काफी पीने नीचे आया तो सुगुणा को जाने की तैयारी में देखा।

"मुझे आज जाना है। इसे देखने के लिए कि गाँवों में समाज सेवा कैसे बढ़ रही है, सरकार की ओर से एक निरीक्षक कल आनेवाला है। आज जाने पर ही "लेड्जर" और "मिनिट्स" तैयार कर सकूँगी। मेरी प्रार्थना को आप भूलिये मत। मैं जाकर चिट्ठी लिखूँगी। दो तीन जगहों में भाषण का भी प्रबंध कर लूँगी। स्वतन्त्रता दिवस पर आप हमारे अल्लीयूरणी गाँव में आइये। आप अपनी पत्नी को अवश्य साथ लाइये। वहाँ के पहाड़ी प्रदेश में देखने योग्य अनेक स्थान हैं। दस दिन के लिए इस शहर के जीवन को छोड़कर अपने गाँव में

आकर देखिये।" सुगुणा मेरी पत्नी से बिदा लेकर रवाना हो गयी। ऐसी एक सुन्दर और सीधी सादी लड़की अगर एक भाई को मिल जाय तो वह जितना खुश होगा, उतनी ही खुशी और सौहार्द्र स्नेह मुझे सुगुणा से मिला। मैंने सिर्फ़ उसकी सुन्दरता देखकर प्रशंसा नहीं की है। वह तीव्रवादी भावनाओं से युक्त थी। वह संकुचित मनोवृत्तिवाली भी नहीं थी। इन्हीं कारणों से मैंने उसकी प्रशंसा की है।

मैं अपने जीवन में समस्यायें उत्पन्न करनेवाले बड़े-बड़े लोगों के बारे में कह सकता हूँ। अगर वह सिर्फ़ इतना कह देती कि अल्लीयूरणी को आ जाइये तो मैं समझ लेता कि वह अपने स्वार्थ के कारण ही मुझे वहाँ बुला रही है। लेकिन उसने मुझे ऐसे संकुचित विचारों से नहीं बुलाया। मेरे भी किसी गाँव में कुछ दिन घूमकर आने की इच्छा थी। गाँव के यथार्थ जीवन को भी देखना चाहता था।

शहर का इतना अधिक विकास होता देखकर कभी-कभी मुझे भय भी लगता था। हर एक शहर में घरों को तोड़कर दूकान बनवा देते हैं। इस प्रकार दूकान बनाने पर वहाँ बसनेवालों की क्या गति होगी। बड़ा मकान है तो एक-एक रूम को "बोर्डिंग और लाड्जिग" नाम देकर किराये पर देते हैं। शहरों के विकास के लिए अनेक दूकानों की आवश्यकता भी है। सत्य को छोड़कर और सब वस्तुएँ शहरों में मिल जाती हैं। घरों को दूकान, बोर्डिंग और लाड्जिग बनाकर व्यापार चलाने लगे तो मध्यवर्गीय लोग कहाँ जाकर रहेंगे? इसी चिन्ता से मेरे

मन में शहरी जीवन से घृणा भी हुई थी। पशुमलै की तराई से मेरे घर के उत्तर और दक्षिण में थोड़ी दूर तक कोई दूकान नहीं थी। अपने मन की घृणा के कारण ही ऐसा एक शान्त वातावरण वाला घर मैंने चुन लिया था।

अल्लीयूरणी गाँव में आने को सुगुणा ने जिस दिन बुलाया था उस दिन को भी मैंने अपनी डायरी में नोट कर लिया। अभी उस दिन के आने में और भी बहुत दिन थे। उसके आसपास आनेवाले दस दिनों के लिए छुट्टी लेने की इच्छा से मैं अपना काम जल्दी से करने लगा। पिछले दिन रात को "तितली" के बारे में सुगुणा ने जो प्रश्न मुझसे किये थे वे सभी एक बार मैंने अपने मन में लाकर देखे। उस बहन का मेरी खोज में आना ही मेरे लिए गर्व की बात थी। नौकरी के लिए सिफारिश पत्र लेने या संपादक का परिचय पूछने या पुस्तकों के लिए भूमिका लिखाने को कई प्रकार से लोग मेरे पास आते हैं। उन सबके बारे में याद रखना कठिन हो रहा है लेकिन इस लडकी को भूलना कठिन हो गया है। इसे याद रखने में मुझे कोई कठिनायी ही नहीं दीख पड़ती।

इसके बाद कुछ ही दिनों में सुगुणा का एक पत्र मुझे मिला। अल्लीयूरणी में अपने बारे में दुष्प्रचार करनेवाले लोगों के अधिक होने के बारे में लिखा था। मैं सोच रहा था कि अपने उपन्यास में आनेवाले काल्पनिक पात्रों को किन-किन नये रास्तों से ले जाना है। इसके अलावा अल्लीयूरणी के इस वास्तविक कथा पात्र को रास्ता दिखाने का काम भी मुझपर आ

पड़ा। मई दिवस के उत्सव में एक भाषण देने के लिए मुझे कोयंबत्तूर जाना था। सुगुणा का पत्र मिलते ही उसी दिन मैं कोयम्बत्तूर जाने को रवाना हो गया। इससे मैं तुरन्त उसे चिट्ठी नहीं लिख सका। दूसरे दिन कोयम्बत्तूर में थोड़ी देर के लिए मुझे अवकाश मिला। सभा शाम के छः बजे होनेवाली थी। पाँच बजे तैयार होना काफी होगा। इसलिए पाये हुए अवकाश को बरबाद न कर मैंने सुगुणा को पत्र लिखा। वह पत्र मैंने उत्साह से ही लिखा।

"सुगुणा इन सबको सोचकर तुम्हें चिन्ता नहीं करनी चाहिए। जिस प्रकार मोटे हाथों में छोटे कंगनों को बिना तोड़े और हाथों को दर्द दिये बिना ही व्यापारी कंगन पहनाता है उसी तरह इस समाज में नये विचारों को बड़ी चतुरता के साथ ले चलना है। असावधानी से कंगन पहनने लगे तो कंगन भी टूट जायेंगे हाथ भी दुखेगा। इसी प्रकार असावधानी से हमारे विचार भी बिखरने नहीं चाहिए। इस पीढ़ी में समाज की भलाई मनिहार की चूड़ियाँ पहनाने के समान चतुराई से होनी चाहिए। आपने लिखा है कि आपका सौंदर्य ही आपकी नौकरी में बाधा डाल रहा है। सुन्दर होना क्या कोई बुरा है? समय और लोगों का मन बदल जाय तो सब ठीक हो जाएगा। स्वतन्त्रता दिवस पर मैं अपनी पत्नी के साथ अल्लीयूरणी आऊँगा। अपने मन में अधिक दुःखी होने पर मुझे चिट्ठी लिखना। मैं उत्तर दे दूँगा।" उस दिन पत्र में यह सब लिखा था। मैंने सोचा कि गाँवों के एक तंबू में

बैठकर लिखे इस पत्र से उसे सांत्वना मिली होगी। वह पत्र इतना प्रभावपूर्ण रूप में लिखा गया था। समाज सेवा, मेहनत की महिमा, पुरानी पीढ़ी के लोगों से नयी पीढ़ी के लोगों के विचारों को कुचल देना आदि बातों के बारे में मैंने लिखा था।

"समाज सेवकों को सोंठ जैसी साधारण दवा के समान समाज की व्याधियों को दूर करना चाहिए। महँगी पेन्सिलिन के समान गर्वीला नहीं बनना चाहिए। महिला सेवा संघ और समाज सेवा आदि को फैशन की सामग्री माननेवाले धनी लोगों को समाज सेवक नहीं बनना चाहिए। उनसे समाज सेवा होने के बदले समाज का बिगाड ही होगा।" आवेश से मैंने कहा। उस भाषण में अपने आप को भूलने का कारण सुगुणा को लिखा पत्र था। उस पत्र में संकुचित रूप में लिखी कई बातें मैंने विशद रूप में भाषण में कह दी। भाषण के बाद मुझसे मिलने आये लोगों से मुझे मालूम हो गया कि उस भाषण ने धमनियों में नया आवेश भर दिया है। उसी समय एक सुन्दर लक्ष्यवादी युवक रसिक से भी मेरी मुलाकत हो गयी।

7. विवेकानन्द मूर्ति का प्यार

सभा के खतम होने पर मंच से नीचे आते ही "आटोग्राफ" में हस्ताक्षर लेने के लिए एक भीड़ जमा हो गयी। उस भीड़ को तृप्त कर जब मैं आगे बढ़ ही रहा था कि एक युवक ने आकर अपना आटोग्राफ आगे बढ़ाते हुए कहा—

"मेरा नाम विवेकानंद मूर्ति है। मैं इस कालेज में बी.ए. के अन्तिम वर्ष में पढ़ रहा हूँ। आपके "कुरिंजि मलर" से मेरा बहुत लगाव है। मैं अपने आटोग्राफ़ में सिर्फ़ हस्ताक्षर लेने के लिए नहीं आया बल्कि आपसे कुछ देर तक बातें करनी है।" पहली दृष्टि में ही उसमें होशियारी और उत्साह दीख पड़ा। "कुरिंजि मलर" का सृजन फूल जैसे लिखे एक पन्ने को दिखाकर उसमें हस्ताक्षर डालने को उसने कहा तो मैंने भावविभोर होकर सुस्मित भाव से उसमें हस्ताक्षर कर दिया।

"आप जो कहना चाहतें हैं यहीं पर कह दीजिये।"— मेरी इस बात से उसने इनकार कर दिया। उसने कहा, "नहीं अकेले में ही कहूँगा। बहुत बातें करनी हैं।" तब आप मेरे होटल के कमरे में आ जाइये। कल रात की गाड़ी से मैंने मदुरै जाने की सोची है।" मेंने उत्तर दिया।

होटल के मेरे कमरे में आने के लिए वह तैयार हो गया। उस भीड़ से मुझे ले जाने के लिए आये गाँवों के कार्यदर्शियों की मोटर में मैं और वह युवक होटल में जा पहुँचे।

कमरे में आकर मैंने पंखा चलाया और उसे बैठने को कहकर मैं भी बैठ गया। उसने कहा—"आपने 'कुरिंजि मलर' उपन्यास के अंत में अरविन्दन की मृत्यु के बारे में कहा है और पूरणी को विधवा पत्नी मानकर तिलक विहीन होकर जीवन बिताने को कहा है। दुःखान्त उपन्यास है। इस अंत के उत्तम काव्य सौंदर्य की मैं सराहना करता हूँ। लेकिन इस

अंत को कुछ बदलकर कुछ प्रश्न पूछने की अनुमति आप मुझे देंगे क्या ?"

"अवश्य दूँगा। आपके प्रश्न में न्याय और अच्छा उद्देश्य रहें तो मैं उसका विरोध नहीं करूँगा।" मैंने जवाब दिया।

"अगर अंत में पूरणी की मृत्यु हो जाय तो अरविन्दन को अविवाहित रहकर समाज सेवा करते हुए दिखायें या और अन्य किसी प्रकार दिखायेंगे।" मेरे इस प्रश्न को अर्थहीन मत समझिये। मेरे सवाल में रहे आंतरिक अर्थ को मैं समझाऊँगा। एक लड़की का मन अपने प्यार और पवित्र प्रेम में जितना दृढ़ रहेगा उतना दृढ़ होकर एक पुरुष का मन रहेगा क्या? मेरे विचार में इस दुनिया में प्यार में दृढ़ रहना लड़कियाँ ही जानती हैं। स्पर्धा और भूख की समस्या से पुरुष ही प्यार बिना जीवन बिताता है। वह बेपरवाह रहता है। जितने प्यार से स्त्री रहती है उतने प्यार से पुरुष रह सकेगा? इसमें शक है।"—

मैंने कहा—"विवेकानन्दमूर्ति! अगर आपके स्थान पर एक लड़की आकर मुझ से यह प्रश्न पूछती तो मैं अवश्य नाराज़ हो जाता। "लैला" के लिये मजनु का प्यार और जीवन त्याग, चोल राजपुत्री के लिये अंबिकापति का पवित्र प्रेम, इन सब की याद आपको है?"

"खूब! लेकिन आपकी कही हुई ये कहानियाँ सिनेमा के लिये, पुरानी किताबों में बड़े बड़े अक्षरों से लिखने के लिए

और मृत पुरानी पीढ़ीवालों के लिये ही बनायी गयी हैं। इस आधुनिक युग के स्त्री पुरुष के बारे में ही मैं पूछ रहा हूँ।"

"वे कहानियाँ मृत पुरानी पीढ़ियों के लिये हो सकती हैं। लेकिन उनमें लिखी गयी समस्यायें मर नहीं गयी है। दुनिया में किसी भी पीढ़ी की समस्यायें उसी के साथ मरती नहीं हैं।"

"हो सकता है। लेकिन मैं आपकी कहानी के बारे में पूछ रहा हूँ। पूरणी की मृत्यु के बाद आपका अरविन्द जीवित रहता तो आप उसे पूरणी के पति का स्थान देकर उसे यों ही ब्रह्मचारी रहने देंगे या दूसरी किसी लड़की से शादी करके नया जीवन बिताने को कहेंगे।"

"एक प्रकार से कहानी कहकर उसका अंत भी कहने के बाद उसे दूसरे प्रकार मानकर प्रश्न करें तो मैं क्या उत्तर दूँ?"

"आपको कष्ट है तो आप मेरे प्रश्न का, अपनी कहानी की समस्या न मानकर एक सार्वजनिक समस्या मान—उत्तर दीजिये।"

"सार्वजनिक समस्या मान लें तो भी मेरे पास उसके लिये ठीक उत्तर नहीं है। पत्नी को सन्तानों को जन्म देनेवाला यन्त्र और सन्तान न होने पर घर का काम करनेवाली नौकरानी माननेवाले पुरुष अपनी स्त्री के मर जाने पर पहले कहे गये काम के लिये एक यन्त्र के रूप में दूसरी एक लड़की को खोजकर जीवन रूपी कैद खाने में डाल कर बन्द करने के समान मांगल्य सूत्र पहना देते हैं।"

एक लड़की के बारे में सोचकर "इससे ही शादी करूँगा" ऐसा मान लेने के बाद, उस लड़की की मृत्यु के बाद, या उसकी अन्य व्यक्ति से शादी होने बाद भी मैं दूसरी लड़की से शादी किये बिना, अपनी प्रेयसी की ही याद में ब्रह्मचारी बनकर जीवन बिता सकूँगा कि नहीं? यही मेरा आपसे प्रश्न है कि "कुरिंजि मलर" स्त्री ऐसा जीवन बिता सकेगी कि नहीं? इसकी व्याख्या करके समझाना आपका कार्य है।" उस युवक ने पूछा।

"विवेक!" आपका किसी से प्यार होने पर उसका इस प्रकार कुछ हुआ क्या?" हँसकर कुछ नटखट—भाव से मैंने उससे पूछा।

"आप इस प्रकार मुझपर दोष मत डालिये जी। अपने विचारों में घूमते हुए प्रश्न ही आपसे कर रहा हूँ। आपका "कुरिंजि मलर" पढ़ने के बाद मेरे मन में यही प्रश्न उठ रहा है। जान लेने की इच्छा से ही मैंने पूछा था। अलावा इसके इस प्रकार का कोई भी अनुभव मेरे जीवन में नहीं हुआ है।

बुद्धिशाली और विवेकी विवेकानन्द मूर्ति के इस प्रश्न का तुरन्त उत्तर सुनकर मैं असमंजस में पड़ गया।

कुरिंजिमलर में निरूपित किया कि एक अच्छी लड़की विरक्त मन के साथ ज़िन्दा रह सकेगी क्या? इसका विचार करने के लिए मुझे और एक उपन्यास लिखना है? या यह सिर्फ़

चिन्ता है ऐसा सोचकर खतम करना ? मैं अपने मन में इस प्रकार सोचकर मौन हो गया।

विवेकानन्द मूर्ति ने बीच में कहा कि "मेरे प्रश्न का अभी आप तुरन्त जवाब नहीं देंगे तो भी कभी भी आप इसे मध्यवर्गीय समस्या मानकर छोटी-सी या बड़ी कहानी लिखें—यही मेरी प्रार्थना है।" मैंने जान लिया कि उस प्रश्न का इसी समय उत्तर देने की ज़रूरी नहीं थी, फिर भी उत्तर दिया :—

पत्नी के निधन के बाद अगर कोई विधुर युवक मेरी आँख में दीख पड़ें तो सतीत्व को दोनों तरफ़ सार्वजनिक रूप में रखेंगे" ऐसा नवीन कवि भारती का गाया हुआ लक्ष्य सच हो गया—ऐसा मैं समझ लूँगा। नवीन सतीत्व को रास्ता दिखानेवाले उस आदर्शवादी को नमस्कार करूँगा।"

उस युवक ने मुझसे प्रार्थना की—"वास्तविक जीवन में आप ऐसे विधुर को देख सकेंगे कि नहीं, आप अपने उपन्यासों में किसी एक नवीन विधुर का चरित्र सृजन कर दिखाइये।"

मैंने विवेकानन्द मूर्ति से पूछा—"मिस्टर विवेकानन्द मूर्ति ! आप पसंद करते हैं। लेकिन नवीन रूप से आदर्श कथा पात्रों का चित्रण करना कितना मुश्किल है। कथा में उन पात्रों को परेशानी में डालते हैं। उनके सृजन कर्ता को भी वे कठिनाई में डालते हैं। इस साल के नववर्ष अंक में "तितली" नामक एक लघु उपन्यास लिखा था न ? उसमें आनेवाले आदर्श कथापात्रों में

सुगुणा को जिस प्रकार का दुःख मिला उसी प्रकार का दुःख अल्लीयूरणी नामक गाँव में समाज सेविका के रूप जीवन बितानेवाली और सुगुणा नाम रखनेवाली दूसरी एक लड़की को भी मिला है। कथा में आनेवाली सुगुणा से भी इस सुगुणा ने अधिक कष्ट पाये हैं। यह बाल विधवा है। समाज सेविका के रूप में आने के पहले अभ्यस्त बी. टी. अध्यापिका के रूप में एक पाठशाला में अध्यापिका का काम भी उसने किया है, मेरी कहानी तितली के प्रकाशन होने के बाद उस कथा से उसको जीवन में बहुत अधिक लांछन लग गया है। मदुरै में मेरे घर मुझसे दुख प्रकट करने आयी थी। कल शाम को इधर कोयम्बत्तूर आने के पहले उसका और एक पत्र भी मुझे मिला। उसका भी उत्तर आज ही लिखा है। तितली नामक कहानी लिखने के बाद अपने ऊपर आये हुए दुःखों को सोचकर मेरा मन अशांत है। इसी समय आप भी एक और समस्या को लेकर कहानी लिखने के लिए कहते हैं?"

"जी! मैं सोचता हूँ कि खुले मन से आपके बोलने के बाद मुझे भी मन खोलकर बोलना है। तितली नामक कहानी मैंने भी पढ़ी है। आज ही मुझे मालूम पड़ता है कि उसके लेखक आप ही हैं। उस कथा के अंत में आपने नायिका की शादी करने के लिए वर ढूँढ़ा था, उसे पढ़कर कहानीकार को तुरन्त उत्तर लिखने के लिए उतावले लोगों में मैं भी एक हूँ। आपकी कथा में आनेवाली कुछ सुन्दर लड़कियाँ नव युवकों को अपने प्रेम पाश में बाँध लेती हैं। आपके 'पहाड़ के शिखर' नलिनी

'गोपुर दीप' की सुशीला जैसी लड़कियों के बारे में पढ़ते समय अठारह से तीस आयु के कोई भी युवक उनको अपनी पत्नी बनाना चाहते हैं। आपकी तितली की नायिका से शादी करनेवाले इच्छुकों में मैं भी एक हूँ इसे अभी से बतलाने में मुझे शर्म नहीं है।"

इस प्रकार विवेकानन्द मूर्ति की बातें सुनकर मैं आश्चर्य चकित रह गया। उस आश्चर्य को अपने आपमें छिपाकर उससे और एक प्रश्न पूछा—

"अब जो आपने कहा है उसी प्रकार इच्छा रखनेवाले अनेक पात्र मुझे मिले हैं। यह सभी काल्पनिक सुगुणा से ही प्यार कर रहे हैं। अल्लीयूरणी में रहनेवाली असली सुगुणा से शादी करने के लिए कहें तो ये लोग क्या उत्तर देंगे?"

18. अनोखा पाठक

मेरे प्रश्नों से उस युवक के मुख पर किस प्रकार के भाव आते हैं उन्हें देखना आवश्यक है। इसलिए मैंने उसी समय ध्यान से देखा। उस युवक ने दृढ़ स्वर में उत्तर दिया।

"जहाँ तक मेरा संबंध है आपके किसी भी उपदेश को जीवन में अपनाने के लिए मैं तैयार हूँ। इसे मैं औपचारिक रूप से नहीं कहता हूँ। वास्तव में कहता हूँ। आपकी कल्पना में उदित सुगुणा के सौन्दर्य से ही मेरा प्रेम नहीं। वास्तविक

संसार में आप एक सुगुणा को दिखाकर "उसके पति तुम बनो" ऐसी आज्ञा देंगे तब भी मैं आपकी आज्ञा का पालन करूँगा। इतना साहस और आत्मविश्वास मुझमें है।"

मैंने पूछा—"क्या आप ऐसा कोई कार्य करके दिखा सकते हैं जिसके आधार पर मैं विश्वास कर सकूँ कि आपकी यह बातें शतप्रतिशत सत्य है?"

उसने कहा—"ज़रूर करके दिखाऊँगा। आपके लिए मैं ऐसे कार्यों को भी करने के लिए तैयार हूँ जिसे करने की मेरी क्षमता पर आप संदेह करते हैं। आपके लेखन ने मुझे ऐसा बना लिया है।

मैंने कहा—ठीक तरह सोचकर उत्तर दीजिये। मैंने आपको धमकी देने के लिए अथवा यों ही मज़ाक में ये प्रश्न नहीं पूछे हैं। इसका आधार मेरे मन में रूपायित एक निश्चय है।

उसने कहा—"वैसे एक निर्णय को स्वीकार करने के लिए ही मैं भी साहसपूर्वक सम्मति देता हूँ।"

मैंने कहा—अच्छा। इतनी दृढ़ता से आप कहते हैं, अतः कथ्य को मैं कहूँगा। थोड़ी देर पहले मैंने कहा, तितली की वास्तविक नायिका अल्लियूरणी में ग्राम सेविका है। काल्पनिक सुगुणा की अपेक्षा उसमें आकर्षण का मोह अधिक है। इसने अपने जीवन में अब तक काल्पनिक सुगुणा की अपेक्षा अधिक कष्टों को भुगता है। सातवीं या आठवीं उम्र में ही इसका विवाह हुआ। उसके बाद विधवा हो गयी उस दुःख को इसने सहन

किया है। आज के समाज में जो कामुक और तथाकथित बड़े लोग हैं वे उस ग्राम सेविका को पवित्र पुष्प के समान वैधव्य अपनाने भी नहीं देंगे। अफवाह फैलाकर दोषारोपण किये बिना नहीं छोड़ेंगे। यदि आपके समान साहस, आत्मविश्वास और आदर्श लगन रखनेवाला कोई प्रगतिशील व्यक्ति उसको जीवन प्रदान करने के लिए आगे बढ़ता है तो वे दिन मेरे जीवन में अत्यधिक सफलता के दिन होंगे। यदि मेरी ऐसी एक बहन होती और उसको इस प्रकार के दुःख होते तो मैं, आदर्श और सुधार की बात करते हुए पास आनेवाले हर युवक से यही प्रार्थना करता। मेरी इच्छा है कि इस मातृभूमि में इस प्रकार निःसहाय और अरक्षित रहनेवाली हर महिला को अपनी बहन समझकर सेवा की जाय। इस इच्छा की प्रथम सफलता के लिए आप तैयार हैं तो कल सुबह अपना छाया चित्र लेकर आइये।"

मेरे कथन में उतनी दृढ़ता कैसे आयी यह सोचकर मुझे ही आश्चर्य हुआ।

"मैं आपके कथन को स्वीकार करता हूँ। अब कल सुबह हम मिलेंगे।" ऐसा कहकर वह युवक हाथ मिलाकर चला गया। आरक्षित उद्यान के समान रहनेवाली सुगुणा को अच्छा पति प्राप्त होगा यह समझकर मैं उस रात शान्तिपूर्वक सोया।

अपने वचन के अनुसार अगले दिन सबेरे विवेकानन्द मूर्ति छाया चित्र के साथ मेरी खोज में आया। मुझे रेल पर चढ़ाकर

गाँव भेजते समय तक मेरे साथ ही रहा। इसी इच्छा से उसी दिन कालेज से अवकाश लेकर वह आया था।

"आपका छाया चित्र सुगुणा को भेजकर विवरण भी लिखूँगा। मेरी बातों को वह ज़रूर मान लेगी। मैं लौटती डाक में उसके छाया चित्र को मगाँकर आपको भेजूँगा। उसे देखकर आप मुझे अपना मत बता दीजिये।" इस प्रकार उस दिन स्टेशन में ही मैंने विवेकानन्द मूर्ति से बिदा ली।

उसने कहा—"मुझे लड़की का छाया चित्र देखने की आवश्यकता ही नहीं। आप अपनी तितली की वास्तविक नायिका कहकर उसका वर्णन कर रहे हैं। यह एक ही योग्यता काफ़ी है। क्योंकि आपका उपन्यास पढ़कर ही तितली की नायिका सुगुणा से मैंने प्रेम किया। स्वप्न देखा। मेरे पिता जी एक निवृत्त अंग्रेज़ी प्रोफ़सर हैं। दो वर्ष पहले माँ की मृत्यु हुई। मेरी बहिनें विवाह कर ससुराल में सुखी जीवन बिता रही हैं। मैं अपने पिता जी का लाड़ला पुत्र हूँ। वे भी अपने कालेज के दिनों में इस प्रकार को सुधारवादी विवाहों का समर्थन करके अनेक सभाओं में बोले थे। ऐसे कुछ विवाहों को उन्होंने कराया भी है। इसलिए मेरी इच्छा-पूर्ति में बाधा नहीं। किंचित भी संदेह के बिना आप कोशिश कीजिए। मार्च महीने के अंत में मेरी सभी परीक्षायें समाप्त हो जायेंगी। अप्रैल में मेरी छुट्टियाँ प्रारंभ होंगी। विवाह के एक सप्ताह पहले आप मेरे पिताजी से मिलकर यह बात कह दीजिये, बस।"

इस प्रकार कहकर उस युवक ने मुझे बिदा दी। मुझे

भ्रम हो गया कि क्या उस निराले पाठक ने मेरे उपन्यास को पढ़कर जो ज्ञान प्राप्त किया वह अधिक है, अथवा उन कुछ ही घंटों में उससे मैंने जो सीखा वह अधिक है।

जब मैं गाँव गया तब पहले सुगुणा के नाम पर ब्यौरे से एक पत्र लिखकर छाया चित्र के साथ भेज दिया। ग्राम सेविका की नौकरी में आपको मिली हुई अफ़वाहें, बदनामी और आपके शरीर के लिये मंडरानेवाले गिद्ध आदि को दूर करने के लिये मैंने एक रक्षक को ढूंढ़ा हैं। मेरी बातों का उल्लंघन किये बिना आप इस चित्र में मुस्कुरानेवाले आदर्शवादी से विवाह कर लीजिये। नहीं तो नौकरी छोड़नी है। यह यौवन, सौंदर्य और आदर्श इन तीनों को एक साथ रखकर आपके समान कोई भी महिला अकेले कार्य करने जाती है तो किसी न किसी रूप में उसकी अफवाहें फैलेंगी ही। यदि आपका विवाह होता है तो लोग इस पर कुछ दिन तक चर्चा करेंगे, परन्तु जब अन्य अफवाहें कम हो जायेंगी तब यह द्वितीय विवाह भी अंगीकृत हो जायगा। मैंने पत्र में बल देकर लिखा था कि आपके पाणिग्रहण के लिये हाथ पसारनेवाले सुधारवादी से विवाह करने में हिचको मत। मैंने उसका छाया चित्र माँगा था। विवेकानंदमूर्ति का चित्र और अपना पत्र दोनों सुगुणा को भेजने के बाद उसी रात मैंने अपनी पत्नी से बड़ी सावधानी से इन प्रयत्नों के संबंध में कहा। उसने इसका स्वागत किया।

उसने कहा कि आप जैसे लोग पागल हैं। सुधार-सुधार कहकर बदनाम होकर झूठी अफ़वाहों के पात्र बन जायेंगे।

कोयम्बुत्तूर में उस लड़के के पिताजी आपको डाँटेंगे। अल्लियूरणी में इस लड़की सुगुणा की बूढ़ी माँ आपको बदनाम करेंगी। आपको समाज में निंदा सुननी पड़ेंगी। आप सिर ऊँचा करके नहीं चल सकेंगे।" ऐसा कहकर उसने अपनी सहानुभूति प्रकट की।

मैंने अपनी पत्नी से कहा—"मुझे इस विषय के बारे में तुमसे नहीं कहना था, कृपया इसके बारे में तुम कुछ मत कहो।" ऐसा कहकर मैं आगे के लिए किये गये प्रबन्धों पर सोचने लगा। वह बाधाओं की प्रतीक्षा करने का ही प्रबन्ध था। लेकिन मैं डरा नहीं। साहसपूर्वक अपने सिद्धांत पर अटल रहा।

उसके बाद एक हफ़्ते तक सुगुणा से पत्र नहीं आया। कोयम्बुत्तूर से मैंने जो पत्र लिखा उसका भी उत्तर नहीं मिला। मदुरै लौटने के बाद उसके विवाह के संबंध में मैंने जो पत्र लिखा उसका भी उत्तर नहीं मिला। मुझे संदेह हुआ कि मैंने बहुत जल्दी की। परन्तु दस दिन में सुगुणा से अनुकूल उत्तर और छाया चित्र मिल गये। उसने पत्र में लिखा था कि आपने ही कहा कि सुधारक को अपना काम मनिहार के समान बहुत सावधानी से ही करना है। परंतु आपने मेरे जीवन में सुधार को ज़बरदस्ती थोपा हैं। फिर भी आपके प्रबंध को मैं सम्मति देती हूँ। वास्तव में मेरे मन की स्थिति और परिस्थिति को समझकर ही आपने इस प्रकार लिखा है। मेरा विश्वास नहीं है कि इस प्रकार जीकर आत्मरक्षा कर सकूँगी। आप परिस्थिति को समझकर ही मेरे हित की बात कहते हैं। मैंने अपना छाया

चित्र भी भेजा है। आपकी बहिन सुगुणा आपके निर्दिष्ट पद पर चलने के लिए तैयार है। आप जब स्वतंत्रता दिवस के लिए इधर आयेंगे, तब मेरी माँ को समझाकर उनकी अनुमति का प्रयत्न कीजिये। हो सके तो जब आप सपत्नीक यहाँ आयेंगे तब कोयम्बत्तूर से उनको भी साथ ले आइये। और क्या लिखना है मुझे मालूम नहीं।

मैंने वह पत्र और उसके साथ छाया चित्र भी तुरन्त विवेकानन्द मूर्ति को भेजा दिया। मैंने चाहा कि विवेकानन्द मूर्ति भी सुगुणा के पत्र को पढ़े, मेरा काम सफल हुआ। चौथे दिन विवेकानन्दमूर्ति ने कोयम्बुत्तूर से मुझे उत्साह के साथ का एक पत्र भेजा था। उस पत्र में लिखा था कि सुधारवादी विवाहों के संबंध में और अपने संबंध में ब्यौरे से लिखकर एक पत्र मैंने पिताजी की मेज पर रखा, उन्होंने उसे पढ़कर 'कर लो' कहकर दो शब्दों में स्वीकृति दी। विवेकानन्दमूर्ति ने लिखा था कि अगस्त महीने की तेरहवीं तारीख को मैं मदुरै जाऊँगा, फिर सब लोग मिलकर सुगुणा को देखने के लिए वहीं से अल्लियूरणी गाँव जायँगे। अपने विचारों की सफलता देखकर मैंने स्वयं सहस्र हाथियों के बल का अनुभव किया। मेरी इच्छा यही थी कि मैं अपनी पत्नी को पराजित कर दूं। इसलिए विवेकानन्दमूर्ति की उस चिट्ठी को मैंने अपनी पत्नी को दिखाया, परन्तु उस चिट्टी ने उसको प्रभावित नहीं किया उल्टे पत्नी ने अपनी बातों से मुझे ही विवश कर दिया।

मेरी पत्नी ने साहसपूर्वक कहा—"आपके पाठक भी बड़े निराले होते हैं? जो स्वयं को बिगाड़ने के साथ-साथ आपको भी बिगाड़ने के लिए तैयार कर लेते हैं। मुझे विश्वास नहीं कि इसका परिणाम अच्छा होगा। उसके इस उत्तर से मेरा सारा उत्साह चकनाचूर हो गया।

मैंने कहा—"मेरे पाठक लोग निराले नहीं। तुम और तुम्हारी धारणाएँ ही निराली हैं, चुप रहो।"

19. इस प्रकार सोचा

मैं सन् 1942 में सुधार सम्मेलन की स्वागत समिति का सचिव था। अब सन् 1961 में मेरी पत्नी ही मुझे मूर्ख बनाने का प्रयत्न करती हैं, उससे नाराज़ न होऊँ तो क्या करूँ? दस बारह दिन पत्नी से बोलना भी मैंने बंद कर दिया। अपने ही घर में प्रगतिवादी विचारों के विरोध को रखकर संसार को ऐसे विचारणीय विषयों को देना दुर्भाग्य की स्थिति है। उसके बारे में भी उस समय मैंने थोड़ी भी चिन्ता नहीं की। अपने प्रयत्नों में उत्साह से संलग्न था। वह सुधारात्मक विवाह किसी न किसी प्रकार करवाने के लिए मैं कटिबद्ध था। इस प्रयत्न में दो महीनों तक मेरे अन्य काम रुके रहे।

इसी बीच जुलाई महीने में व्यवसाय संघ कार्य के लिए कोयम्बत्तूर जाने का मौका मुझे मिला। उस समय भी

विवेकानन्दमूर्ति से मैं मिला। वह अपने पिता जी से मिलने के लिए मुझे बुला ले गया। उस युवक के पिता मुझसे अधिक प्रगतिवादी थे, उनके साथ बातचीत करने के बाद ही यह मुझे मालूम हुआ।

उन्होंने कहा—"इसे कर लीजिये। हमारे ज़माने में किशोरावस्था में इस प्रकार सोचना भी पाप माना जाता था। महाविद्यालय में प्राध्यापक बनने के बाद जब देश में भी नया साहस फूट निकला तब ऐसे कुछ प्रयत्न मैं भी करनेलगा धन्यवाद। मेरी अभिलाषा है कि मेरा पुत्र एक श्रेष्ठ सुधारवादी बने। मैं देखता हूँ कि उसका मन मेरी अभिलाषा से नहीं. आपके लेखन से बढ़ा है। मैं उसे आपको सौंप देता हूँ। मर्जी के अनुसार कीजिए।" इस उम्र में उनके उत्साह को देखकर मुझे ऐसा लगा कि उन्होंने भी अपने जीवन में, किशोरावस्था में विजातीय अथवा सुधारात्मक विवाह के कारण झंझटों को झेला होगा। मगर इस बारे में उनसे चर्चा का वह मौका नहीं था।

अगस्त तेरहवीं तारीख को सुबह ही मदुरै आना है ऐसा विवेकानन्दमूर्ति से कहकर मैं गाँव लौटा। परीक्षाएँ ख़तम होने के बाद चैत्र महीने में सुगुणा और विवेकानन्द मूर्ति की शादी तय कर दी गयी।

मैंने सुगुणा को इस प्रकार पत्र लिखा कि "आपके भावी पति के साथ पन्द्रह अगस्त को सबेरे अल्लियूरणी को आनेवाली पहली गाड़ी से आऊँगा। मेरी पत्नी को सहसा कुछ हो गया है

इसलिए उसका मेरे साथ आना संदिग्ध है। मैं और विवेकानंद मूर्ति दोनों ज़रूर आयेंगे।" उस महिला के प्रति मेरा अधिकार बहुत बढ़ता गया मैं संबोधन में बहुवचन को छोड़कर एक वचन का प्रयोग करने लगा। मुझे ऐसा लगा कि अधिक शिष्टाचार में कम स्नेह देने की अपेक्षा शिष्टाचार को कम कर, स्नेह को प्रधानता देना अच्छा है। मैंने वही किया।

सुगुणा से पत्र आया उसमें लिखा था—"स्वतंत्रता दिवस पर ज़रूर आ जाइये। वड़े और खीर के साथ त्योहारोचित भोजन यहाँ आपकी प्रतीक्षा करेगा।" मैं सोचने लगा कि अल्लियूरणी जाकर प्राचीन विचारों में डूबी हुई सुगुणा की बूढ़ी माँ से इन बातों को कहकर कैसे उन्हें तैयार कर पाऊँगा। यदि मेरी पत्नी भी मेरे साथ अल्लियूरणी में आकर सुगुणा की माँ के हृदय परिवर्तन में सहायता देती तो काम बहुत सरल होता। स्त्रियों के मन को बदलने के लिए स्त्रियों का बोलना ही ठीक है।

पुरुष लोग उसकी नकल नहीं कर सकते। करके ही देखना होगा, परन्तु महिलाओं के समान कलापूर्ण ढंग से उसे मैं नहीं कर सकूँगा। दूसरा चारा नहीं है। मैंने समझ लिया कि इस काम में मेरी पत्नी मुझे सहयोग नहीं देगी। उसकी प्रतीक्षा करने से कोई लाभ नहीं है। पूरा भार मेरे सिर पर पड़ा जिसने मुझे यह सोचने के लिए विवश किया कि मुझे अपने प्रयत्न से ही सुगुणा की माँ का हृदय परिवर्तन करना है। तेरहवीं तारीख़ को खुद ही विवेकानन्दमूर्ति कोयम्बत्तूर से मदुरै आ गये। उनके प्रथम पत्र से जो सूचना मिली उसके अनुसार

रात को रेल्वे स्टेशन जाकर उसको बुला ले आया था तब मेरी पत्नी मुझपर इतनी नाराज़ थी कि तापमान अपने ऊँचे स्तर पर पहुँच गया। चौदहवीं तारीख़ को पूरे दिन मैंने कोयम्बत्तूर के युवक को मदुरै में घुमाया। पन्द्रहवीं तारीख़ सुबह साढ़े चार बजे अल्लियूरणी जानेवाली प्रथम बस में दो टिकटों के लिए मैंने प्रबंध कर दिया था।

चौदहवीं तारीख को रात के बारह बजे मेरी पत्नी ने मुझे जगाकर कहा "तार आया है" और एक कागज़ मेरे हाथ में थमा दिया। नींद के नशे में मैंने कुछ नहीं समझा फिर उस तार को पढ़ा। जब मैं उस तार को पढ़ रहा था तब विवेकानन्दमूर्ति गहन निद्रा में मग्न थे। तार के शब्दों से मैं सहम गया और क्रुद्ध भी हुआ। अल्लियूरणी से सबेरे सात बजे भेजे गये उस तार में लिखा था—"आप कल इधर मत आइये, फिर कभी भी आने की आवश्यकता नहीं है"—

सुगुणा

मैंने सोचा—"यह युवती मेरे बारे में क्या सोच रही है? क्या मैं इसके हाथ की कठपुतली हूँ?"

पहली बार वह मुझसे मिली, जब उसने कहा था, आपको ही समाज के मन और विचारों को बदलना चाहिये। धोखा खाये बिना और फिसले बिना जीवित रहने के लिये आप मुझे जो दवा दिलायेंगे उसे मैं ज्यों का त्यों स्वीकार करूँगी। मेरी जीवन-व्याधि को स्थाई शान्ति देने के लिये आप जैसे

समाज के डाक्टर को ही दवा बतलानी होगी।" क्या अपने उन शब्दों को उसने हवा में उड़ा दिया?

उसने कई बार मुझ से कहा था कि "चिंताओं और दुःखों में फँसकर कई बार मैंने मन ही मन आत्महत्या कर ली। आगे भी मुझे आत्महत्या के अवसरों से बचकर जीने के लिये एक रास्ता बताइये।"

अब यह सारा कथन क्या हुआ? जिस आदमी ने यह कहावत कही कि "नारी की बुद्धि पश्चात बुद्धि है" उसने पुरोबुद्धि से ही यह कही होगी। मुझे अपने पर ही क्रोध हुआ कि मैंने क्यों इसके लिये इधर उधर घूमकर अच्छे पति के हाथ में सौंपने का प्रयत्न किया? यह जानकर भी तार अल्लियूरणी से आया है विषय जानने की उत्सुकता न दिखाकर मेरी पत्नी मुख मोड़कर अपने बिस्तर पर लेट गयी। मुझे नींद नहीं आयी। मैं अपने कमरे में गया। मेज की बत्ती जलाकर सुगुणा को एक लंबा पत्र लिखा। मेरा क्रोध पत्र में व्यक्त हुआ।

मेरे पत्र के अंतिम वाक्य इस प्रकार थे—"तुम्हारे तार का अर्थ क्या है मेरी समझ में नहीं आया। मिट्टी के घोड़े पर विश्वास करके नदी में जो उतरा उसकी कथा हो गयी। यहाँ अपने घर ठहरे मेहमान विवेकानन्दमूर्ति को मैं कल सबेरे क्या उत्तर दूँ?"

बहुत गुस्से से सुगुणा को लिखे पत्र को लिफ़ाफ़े में बंदकर डाक में डालने के लिए मैं तैयार हुआ। "अल्लियूरणी बस के

निकलने के एक घंटा पहले उठना है।" ऐसा सोचकर मैंने घड़ी में अलारम रखा था। अलारम को सुनकर विवेकानन्दमूर्ति उठ गये।

उन्होंने मुझसे पूछा—"बस निकलने में समय कम है क्या? तो हम चले? उनके संदेह निवारण के लिए मैंने कहा आज यात्रा स्थगित"। थोड़ी देर के बाद कहा—"मिस्टर विवेकानन्दमूर्ति, ऐसा लगता है कि सुगुणा को कोई असुविधा है। आज नहीं आना ऐसा उसने कल रात एक तार भेजा है। तार बहुत देरी से ही आया।" वह युवक मेरी बातों को सुनकर चौंके बिना मौन होकर सामने की कुर्सी पर बैठ गया।

उन्होंने कहा—"इसमें क्या है? और एक हफ़्ते आपके साथ मदुरै में रहूँगा। इस बीच में अल्लियूरणी से पत्र आ जाये तो उसके अनुसार हम यात्रा को बदल सकते हैं।" सबेरे वह पत्र सुगुणा को भेजने के बाद ही मैं शान्त हो सका। मैं अल्लियूरणी नहीं गया यह जानकर मेरी पत्नी शान्त हुई।

सुगुणा के तार के कारण मैं पिछली रात सो नहीं सका। अगले दिन सबेरे मैं अस्वस्थ हो गया। लेकिन मैंने यह विवेकानन्दमूर्ति से नहीं कहा, मैंने पूछा, "विवेकानंद मूर्ति, आपको मंदिर देखने की इच्छा है न? आज सबेरे तल्लाकुलम से मैं अपने एक मित्र को कार सहित बुला लूँगा। वे आपको साथ लेकर सभी जगह घुमायेंगे। शाम को आपके लौटने तक मैं अपने अन्य कार्य पूरे कर लूँगा।" मेरा आशय समझकर उन्होंने

तुरन्त सम्मति प्रकट की। मैंने तुरन्त तल्लाकुलम को टेलिफोन करके अपने दोस्त मणी को गाड़ी के साथ पसुमलै बुलाया। मणी विवेकानन्दमूर्ति को शहर दिखाने के लिए साथ ले गया। थकावट के कारण मैं आराम कुर्सी पर सो गया। फिर मुझे कुछ भी याद नहीं। जब मैं जागा तब दरवाज़े पर डाकिया आकर खड़ा था। मेरी पत्नी ने मुझसे कहा आपका कोई पार्सल आया है, हस्ताक्षर कर दीजिये।" ऐसा कहकर चली गयी। उस पार्सल में दुःख ही आ गया था। वह कितना बड़ा दुःख था? वह दिन मेरे लिए अच्छा दिन नहीं था। सिर्फ़ मेरे लिये क्या? ऐसा लगता है कि शायद संसार के लिए ही वह सुदिन नहीं था। शिक्षा, गहन विचार और अनुभवों ने मुझे सुन्न कर दिया था। वरना मैं फूट-फूटकर रोता। कुछ सोच-सोचकर मैं गरम हो गया। इस प्रकार की सामाजिक कुरीतियों से अबलाओं और अनाथ लोगों को जब तक वास्तविक स्वतंत्रता नहीं मिलती तब तक भारत का हर दिन दुर्दिन ही होगा।" ऐसा सोचकर तड़प उठा। उस पार्सल में सुगुणा के पत्र और पत्रिकाएँ मेरे सामने भयंकर रूप से घूमने लगे।

20. किसी तरह समाप्त हुआ

पार्सल पर डाक घर की मुहर से पता चला कि तार भेजने के चार पाँच घंटे पहले ही यह पार्सल डाक घर में पहुँच गया था। उन सबको मैंने दूसरी बार पढ़ा उस पत्र ने

शरीर में आपाद मस्तक कंपन भर दिया। मेरी हृदय-भावनाएँ तड़प उठीं। उसने लिखा था—

"आदरणीय समाज के डाक्टर लेखक को, अबला सुगुणा का अंतिम नमस्कार। इस पत्र के आरंभ में दिया हुआ आदर केवल आपके लिए ही है। समाज को नहीं। इस निर्लज्ज समाज को आदर की क्या आवश्यकता है? उसी दिन मैंने आप से कहा था कि मैं दुःख के बोझ से दबकर कई बार मानसिक रूप से आत्महत्या कर मर गयी थी।

आज इसी क्षण मैं आत्महत्या करने का निश्चय कर रही हूँ। कल आपको यह पत्र और इसके साथ रहनेवाली दुर्गन्ध भरी निम्न स्तर की पत्रिकाओं की प्रतियाँ मिल जाएँगी, उस समय अल्लियूरणी के अस्पताल में मेरे शरीर का पोस्टमार्टम होता होगा।

कल प्रातःकाल मैं इस घातक संसार को देखना नहीं चाहती। अतः दो पोटली खटमल की दवा खाकर मैं अपने जीवन को समाप्त करनेवाली हूँ। मुझे चिन्ता क्या? मैंने जीवित रहने की इच्छा की, परन्तु वह स्वप्न हो गया। अब मैंने मरने के लिए निश्चय किया। कल प्रातःकाल अल्लियूरणी में देश का झंडा फहरेगा और आनन्द स्वतंत्रता का गीत सर्वत्र गूंज उठेगा उस समय मेरे प्राणों को वास्तविक आनन्द और स्वतंत्रता प्राप्त होगी। मुझे ऐसा लगता है कि सामाजिक समस्याओं का जब तक अच्छा हल नहीं निकाला जाता तब तक

स्वतंत्रता दिवस को इस प्रकार मृत्यु दिवस के रूप में मनाने के सिवा कोई दूसरा चारा नहीं।

मेरे मरने का कारण जानना है तो इसके साथ लगी हुई पत्रिकाओं को पढ़िए। इन पत्रिकाओं में जो दुष्प्रचार निकला है वह पढ़कर उपाधि लेकर गाँव में काम करने के लिए आई हुई महिला को यहाँ हिंस्र निवासियों ने जो पुरस्कार दिये हैं इन्हें जानने के बाद मैं अपमान का अनुभव करती हूँ। मैं बाहर नहीं जा सकती। गाँव छोटा होने के कारण जो व्यक्ति मिलने पर इन पत्रिकाओं में जो समाचार निकला उसपर ही बोलते हैं। एक दुष्ट महिला ने मेरी निष्कपट माँ के पास आकर इस पत्रिका को पढ़कर सुनाकर कहा—"गाय को पालने के समान पुत्री को मत पालिये। इसको दबाकर नियंत्रण में रखिये। उसपर विश्वास करके मेरी माँ भी मुझे निर्लज्ज समझती है और कहती भी है।

उस पत्र में लिखा था कि आपके तितली की नायिका काल्पनिक सुगुणा भाग्यशाली है। इस प्रकार अनेक कष्टों को और अपमानों को झेलकर हत्या करने का निर्णय लेने तक गाँव में नहीं रही। जल्दी गाँव को समझकर बाहर गयी। इस भयंकर अंधकार से बाहर जाने में असमर्थ मैं यहीं मर गयी। आपकी काल्पनिक सुगुणा के जीवन और मेरे जीवन में यही अंतर है। कल तक मैं विश्वास कर रही थी कि मैं बहुत साहसी हूँ। आज रास्ते में आने जानेवाले लोग मुझे देखकर धीमे स्वर में कुछ बोलते हैं, आपस में हँसते हैं और मुझपर उँगली उठाते हैं, इन

सबको देखकर मेरा तन काँप उठता है। मुझे ऐसा लगता है कि सामने दिखायी पड़नेवाले सभी लोग नरमांस भक्षी भूत बनकर मुझे धमकी देते हैं।

मैं मरी जा रही हूँ। एक पत्रिका ने मेरी अफ़वाह फैलाने के लिए लिखा है—

'विधवा और व्यभिचारिणी' इस प्रकार का शीर्षक देकर मेरे नाम, गाँव और मेरा पद सबका उल्लेख कर मुझे बदनाम किया गया है। और एक पत्रिका में 'समाज सेवा बनाम वेश्यावृत्ति' शीर्षक देकर लिखा है कि अल्लियूरणी गाँव में मुझे अनेक युवकों को बिगाड़ने के लिए बिठाया है।" मुझे लगता है कि इस गाँव के प्रमुख लोग जो मेरे शत्रु बन गये हैं उन्हीं की करतूत है। यदि इन लंपटों और कपटियों के साथ मैंने उनके अनुकूल व्यवहार किया होता तो ये लोग मेरे सम्बन्ध में ऐसा दुष्प्रचार करने का साहस न करते। मैंने कठोरता से न्याय का पालन किया उसीका परिणाम है यह। इसमें तमाशा यह है कि ये पत्रिकाएँ, जो स्त्रियाँ समाज सेवा के नाम पर वास्तव में व्यभिचार करती हैं, उनपर कुछ नहीं लिखतीं। मेरी जैसी असहाय महिलाओं का नाश करना ही इन लोगों का ध्येय है। इस पत्र के मिलने के पहले ही मेरा भेजा हुआ तार आपको मिला होगा। कृपया आप और आपके मित्र दोनों इधर आने का कष्ट न करें। मेरे बारे में जो अपवाद फैलाये गये है वे आप तक न पहुँचे।

मुझे ऐसा लगता है कि इतना सब कुछ सुनने के बाद आपके दोस्त विवेकानन्दमूर्ति मुझसे विवाह नहीं करेंगे। मुझे मालूम नहीं किसकी पत्नी बनना है और किसके साथ रहना है। अत. डरकर अंत में मृत्यु का वरण करती हूँ, और मनुष्य के साथ जीने का मुझमें साहस नहीं है। मुझे छोड़ दीजिये। मरने के बाद भी इस गाँव में मैं भूत के रूप में मँडराती रहूँगी। किसलिए? मालूम? मेरे समान कोई अबला बनकर यहाँ आये तो मैं उसे धमकी देकर वापस भेज सकूँ। अब अपनी वाणी बंद करती हूँ, मुझे क्षमा कीजिए। यदि अगले जन्म में मैं स्त्री बनूँ तो आपके द्वारा ढूँढ़े हुए वर को ग्रहण करके, आपके प्रति अपनी कृतज्ञता व्यक्त करूँगी। मेरा निवेदन है कि मुझे अपनाने के लिए आये हुए अपने दोस्त को यह पत्र मत दिखाइये। दिखायेंगे तब नुक़सान नहीं है। मरनेवालों के संबंध में लोग जितना चाहे कहें, मृत्यु से अधिक कुछ नहीं कर सकते। मैं तो मरने जा रही हूँ। आपके दोस्त मेरे बारे में कुछ भी सोचें तो भी मुझे चिन्ता नहीं है। आपकी पत्नी को मेरा प्यार भरा नमस्कार कहिये। कभी अवसर मिलता है तो मृत्यु को वरण करने की कथा लिपिबद्ध कर दीजिये। इस तरह लिखिये कि समाज को चोट लगे।

भाग्यहीना आपकी बहिन

सुगुणा

पत्र समाप्त हो गया था।

उन पत्रिकाओं के नाम थे—समाज मित्र, न्यायवादी, सदाचार का ढोल पीट कर जो लोग धन नहीं देते थे उनको बदनाम करने के लिये ही ये पत्रिकाएँ चलायी जाती थीं, उन पत्रिकाओं में सुगुणा के संबंध में जो लिखा गया था उसे पढ़ते समय मुझे बहुत दुःख हुआ। पढ़ने पर उसके प्रचार के प्रभाव में न आने के लिए मुझे उसी व्यक्ति के समान अपने मन को पवित्र रखना पड़ा, जो गंदी गली से निकलते समय अपने को उस गंदगी से बचा लेता है। मैंने केवल सुगुणा के पत्र को अपने पास रखकर बाकी को जला दिया।

मदुरै में उस दोपहरी में जो टैक्सी शहर के बाहर जाने के लिये तैयार थी उसको ले जाना कठिन था। अल्लियूरणी मदुरै से दो सौ मील दूर पर है। प्रति घंटे साठ मील रफ़्तार जाने पर भी साढ़े तीन घंटे लगेंगे, मैंने चलचित्र वितरण करनेवाले एक मित्र को कहला भेजा कि जल्दी मुझे "कार" चाहिये। उन्होंने मेरी स्थिति को समझकर, रात नौ बजे तक लौटाने की शर्त पर कार भेजी। बड़ी तेजी के साथ मैं निकला।

जब मेरी कार अल्लियूरणी पहुँची तब शाम के सवा चार बजे थे। परन्तु उसके अन्दर ही सुगुणा ने अपने कथन को कार्य रूप में परिणत कर दिया था।

लोकलफण्ड अस्पताल के द्वार पर बहुत भीड़ थी। जिस पोस्टमार्टम-कमरे का उल्लेख सुगुणा ने अपने पत्र में किया

था उसकी याद मुझे आयी। सजल नेत्रों से वहाँ खड़ा हुआ था। पहली बार जब वह मुझ से मिलने आयी थी तब की घटनायें और उस बहिन का सुन्दर मुख, अब एक करुणामय नाटक के समान मेरे मानस पटल पर दिखायी दिया।

"सुगुणा" शब्द का अर्थ है "अच्छे गुणवाली"। आगे उस सुन्दर शब्द के लिये संसार में स्थान ही नहीं रहेगा। शब्द रूपी नारियों के लिये अर्थ ही दुर्लभ है। अर्थ रहित शब्द भी विधवा के समान हैं। सुगुणा नाम धारिणी विधवा रही उसका। जीवन समाप्त हो गया। वह नाम ही अर्थ रहित होकर विधवा हो गया-ऐसा सोचकर मैं अंदर ही अंदर कुढ़ रहा था। वहाँ किसी को नहीं जानता था। मैं किसके पास जाकर सांत्वना दूँ? सब जगहों पर सब के दुःखों को सुननेवाले उस ईश्वर के प्रति सहानुभूति प्रकट करके मैं लौटा।

लोकलफण्ड अस्पताल के सामने जो भीड जमा थी उस भीड में से कई प्रकार के सहानुभूति पूर्ण शब्द मेरे कानों में पड़े।

एक बूढ़े ने दूसरे बूढ़े से कहा—"इस खटमल की दवा से मौत ही बढ़ती है।"

मैंने सोचा था कि जब समाज में रहनेवाले क्रूर लोगों के विचार ही अच्छे लोगों को मारनेवाला विष है, तब केवल खटमल की दवा पर दोषारोपण क्यों?। वह पूरा गाँव उस

दिन सुगुणा के बारे में ही सोच रहा था। उसकी मृत्यु से संपूर्ण गाँव में खलबली मच गयी। इस प्रकार खलबली मचाना जीवन से नहीं हो सका, मृत्यु से हो गया न ?

गांव की सभी गलियों में स्वतन्त्रता दिवस की सजावटें हो रही था। "भारत देश के गाँव कोयला से ढ़के हुए स्वर्ण सुरंग है।" तितली का लिखा हुआ वाक्य याद आया। मेरे मुँह ने धीमे स्वर में कहा—"आज उस कोयला के नीचे वास्तव में सुगुणा नामक स्वर्ण को रखकर बंदकर दिया गया।" जब गाड़ी मदुरै लौटी तब सवा नौ बज चुके थे। तल्लाकुलम के मित्र, विवेकानन्दमूर्ति को मदुरै दिखाकर उन्हें मेरे घर छोडकर चले गये थे। वह सुन्दर युवक मेरी प्रतीक्षा में जाग रहा था। उस समय मुझे ऐसा लगा कि उनसे गले लगकर सिसक-सिसककर रोऊँ जैसे महिलाएँ शोक मनाती हैं। लेकिन वैसा कर नहीं सका।

"हमने कुछ सोचा और वह दूसरे प्रकार से हुआ, हम भाग्यशाली नहीं हैं" कहते हुए मैंने सुगुणा का पत्र विवेकानन्द मूर्ति को पढ़ने के लिए दिया।

उन्होंने पत्र पढ़ना शुरू किया। उसकी आँखों में आँसू आ गये। वे रोते-रोते ही उसे पढ़ पाये। वह युवक जेब से रूमाल निकालकर मुँह बंद करके रोने लगा।

अवरुद्ध कण्ठ से मैंने धीमे स्वर में उनसे कहा।

"मिस्टर विवेकानन्दमूर्ति। कोयम्बुत्तूर में हमारे प्रथम मिलन के अवसर पर आपने कहा था कि अपनी पत्नी को खोकर दुःखी होनेवाले एक नये नायक की कल्पना से एक उपन्यास लिखना चाहिए, उस कथन की याद मुझे आती है। उसके लिए आवश्यक कथा नायक को मैं अब अपने सामने देखता हूँ।"

"लिख सकते हैं जी। परन्तु उस कथा की नायिका को अपना जीवन प्रारंभ करने के पहले हमने मार दिया?" ऐसा कहकर उस युवक ने प्रलाप किया। उस समय उसको देखना बड़ा कारुणिक दृश्य था।

"दोस्त। रक्त और पीव जिन घावों में भरा हुआ है उसे छिपाने के लिए क्या रेशमी कपड़े नहीं चाहिए? ऐसी रेशमी चादरें बनाने के लिए इन तितलियों को मारने ही से धागे मिलते हैं।" ऐसा कहकर मैं विरक्ति से हँसा।

मैं जो समाज का डाक्टर कहलाता हूँ, उस दिन अपने मन के दुःख का इलाज नहीं कर सका। मेरी बातों को मानकर इतनी दूर से आये मेरे समाने खड़े हुए उस युवक के दुःख के लिए भी मैं दवा नहीं दे सका। दोनों औषधि रहित रोगी बने हुए थे। और करते भी क्या? दुःख की क्या दवा है? हमने विश्वास किया कि काल ही दवा बन सकता है।

उपसंहार

काल्पनिक कथा से प्रारंभ होकर वास्तविक जीवन में समाप्त हुई इतनी दुःख भरी घटनाओं के बाद मैं अक्तूबर महीने में गांधी जयन्ती के अवसर पर ग्राम सेविकाओं को प्रशिक्षण देकर भेजनेवाले एक समाज-कल्याण महाविद्यालय में भाषण देने गया था। भाषण समाप्त होते ही एक तेज़ युवती ने मुझसे एक प्रश्न पूछा—

"पत्रिका के कार्यालय से पता चला कि समाज सेविकाओं की पराजय को चित्रित करनेवाले तितली नामक उपन्यास के रचयिता आप ही हैं। हम जैसी अभी प्रशिक्षण पानेवाली महिलाओं को आपके उपन्यास से भय के सिवा कुछ नहीं मिलेगा। इस प्रकार की कथाओं से क्या लाभ है?"

उसके प्रश्न में शैतानी ही अधिक ध्वनित हो रही थी।

मैंने कहा—"अविश्वास को बढ़ाने का उद्देश्य विश्वास को दृढ़ करना है। यदि यह कहा जाय कि किसी कार्य में समर्थ लोग असफल हुए हैं, वही नये लोगों को चेतावनी देने के साथ-साथ सफलता प्राप्त करने के लिये नया साहस प्रदान करेंगे। सफलता का प्रयत्न कीजिये।

उस युवती ने झट से पूछा—

"ऐसा लिखिये कि सुगुणा ग्राम सेविका का काम करके सफल होती है।"

"जब वास्तविक सुगुणा की कथा ऐसी हो गयी तब काल्पनिक सुगुणा के संबंध में लिखने के लिए और क्या है?" ऐसा सोचता हुआ मैं रुद्ध मन से मंच से उतरा।

जब तक रेशम का कीड़ा जीवित रहता है तब तक मुलायम रेशम को उत्पन्न करके अपने चारों ओर लपेट लेता है। यदि वह अपने बंधन को तोड़कर एक बार बाहर चला जाये तो उसे फिर बाँधा नहीं जा सकता है।

सच है। मेरी काल्पनिक कथा की सुगुणा गाँव से चली गयी। वास्तविक सुगुणा जीवन से भी उड़ गयी।

इस उपन्यास में

राष्ट्र-नेताओं के भाषणों से प्रभावित, ग्राम-सेवा की भावना से ओत-प्रोत सौंदर्य की प्रतिमूर्ति स्नातिका के जीवन की मर्मस्पर्शी कहानी; जिसमें तमिल के सुप्रसिद्ध उपन्यासकार दीपम ना. पार्थसारथी ने ग्राम विकास के बाधक तत्वों का पर्दा फाश ही नहीं किया है अपितु इसमे गाँधीवादी व्यक्तित्व एवं तीक्ष्ण प्रतिभा का समन्वय, यथार्थ और आदर्श के संघर्ष का जीता-जागता सफल चित्रण, हिन्दी जगत के उपन्यास क्षेत्र में एक नयी शैली प्रस्तुत कर दिशा दर्शन कराया है।

Dakshina Bharat Hindi Prachar Sabha, Madras-17.